ISSN-0971-8397

योजना

जुलाई 2014 विकास को समर्पित मासिक ₹ 10

लोकतंत्र एवं चुनाव सुधार

चुनाव सुधार
अतीत और भविष्य
जगदीप एस. छोकड़

चुनाव सुधारों का इतिहास
एस.वाई. क़ुरैशी

उम्मीदवारों की बहुलता और
भारतीय चुनाव सुधार
कौशिक भट्टाचार्य

चुनाव, चुनाव सुधार और
मज़बूत होता लोकतंत्र
सुब्रत के. मित्रा

विशेष आलेख
भारत में अंगदान: परोपकारिता और
कर्म के बीच द्वंद्व
सुभद्रा मेनन

मुक्त विद्यालय-छुए मन, बदले जीवन

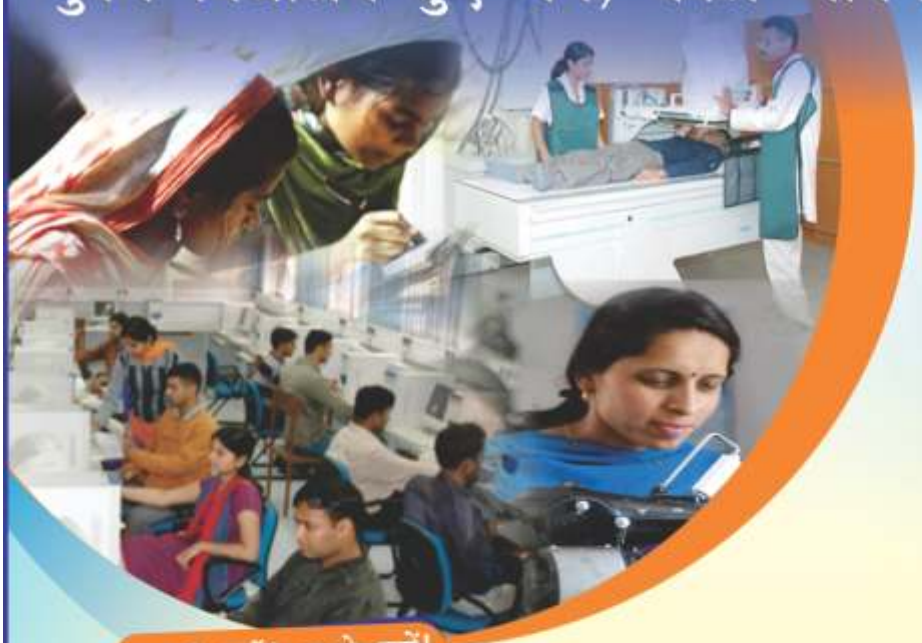

आओ पढ़ें! आगे बढ़ें!

अपनी शिक्षा आगे बढ़ायें...
मुक्त विद्यालय को अपनायें

पाठ्यक्रम	प्रवेश शुल्क (बिना विलम्ब)			प्रवेश के लिए तिथियां
	पुरुष	महिलाएं	छूट प्राप्त वर्ग	
• मुक्त बेसिक शिक्षा कक्षा–III, V एवं VIII	–	–	–	30 जून (प्रत्येक वर्ष)
• सेकेन्डरी (कक्षा - X)				ब्लाक-1 : 16 मार्च–31 जुलाई (बिना विलम्ब शुल्क)
(i) पाँच विषयों के लिए	₹ 1350	₹ 1100	₹ 900	1 अगस्त–15 सितम्बर (विलम्ब शुल्क के साथ)
(ii) प्रत्येक अतिरिक्त विषय के लिए	₹ 200	₹ 200	₹ 200	ब्लाक-2 : 16 सितम्बर–31 जनवरी (बिना विलम्ब शुल्क)
				1 फरवरी–15 मार्च (विलम्ब शुल्क के साथ)
• सीनियर सेकेन्डरी (कक्षा - XII)				ब्लाक-1 : 16 मार्च–31 जुलाई (बिना विलम्ब शुल्क)
(i) पाँच विषयों के लिए	₹ 1500	₹ 1250	₹ 975	1 अगस्त–15 सितम्बर (विलम्ब शुल्क के साथ)
(ii) प्रत्येक अतिरिक्त विषय के लिए	₹ 230	₹ 230	₹ 230	ब्लाक-2 : 16 सितम्बर–31 जनवरी (बिना विलम्ब शुल्क)
				1 फरवरी–15 मार्च (विलम्ब शुल्क के साथ)
• व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम (6 माह से 2 वर्ष)	पाठ्यक्रमों एवं अवधि के आधार पर			सत्र - 1 : 30 जून (प्रत्येक वर्ष) सत्र - 2 : 31 दिसम्बर (प्रत्येक वर्ष)

प्रवेश के लिए अपने निकटतम अध्ययन केंद्र अथवा संबंधित क्षेत्रीय कार्यालय से संपर्क करें।
विलम्ब शुल्क, अध्ययन केंद्रों, क्षेत्रीय कार्यालयों आदि की विस्तृत जानकारी के लिए वेबसाइट www.nios.ac.in देखें।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार का एक स्वायत्त संस्थान)

ए–24/25, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर–62, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर (उ.प्र.)

टॉल फ्री नं. 1800-180-9393; ईमेल : lsc@nios.ac.in वेबसाइट : www.nios.ac.in

विश्व की सबसे बड़ी मुक्त विद्यालयी शिक्षा प्रणाली

योजना

वर्ष 58 ● अंक 7 ● जुलाई 2014 ● आषाढ़-श्रावण, शक संवत 1936 ● कुल पृष्ठ 60

प्रधान संपादक
राजेश कुमार झा

वरिष्ठ संपादक
रेमी कुमारी

संपादक
ऋतेश पाठक

संपादकीय कार्यालय
538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
http://www.facebook.com/yojanajournal

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
वी. के. मीणा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा

दूरभाष : 26100207
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण : **जी. पी. धोपे**

इस अंक में

संपादकीय	-	3
चुनाव सुधारों का इतिहास	एस.वाई. कुरैशी	5
भारतीय लोकतंत्र एवं चुनाव सुधार की आवश्यकता	अनिल वर्मा	9
चुनाव सुधार : अतीत और भविष्य	जगदीप एस. छोकड़	13
चुनाव-प्रणाली : विसंगतियां और सुधार	अभय कुमार दुबे	18
चुनाव, चुनाव सुधार और मज़बूत होता लोकतंत्र	सुब्रत के. मित्रा	23
न्याय एवं अधिकार का लक्ष्य और भारतीय लोकतंत्र	शेष नारायण सिंह	27
विशेष आलेख		
भारत में अंगदान: परोपकारिता और कर्म के बीच द्वंद्व	सुभद्रा मेनन	31
उम्मीदवारों की बहुलता और भारतीय चुनाव सुधार	कौशिक भट्टाचार्य	35
चुनाव सुधार पर खामोशी क्यों?	उर्मिलेश	39
चुनाव बनाम अपराधीकरण	आनंद प्रधान	43
जनमत और चुनाव नतीज़ों का फर्क़	सत्येंद्र रंजन	47
अनुकरणीय पहल		
असम के नदी द्वीप समुदायों की एकमात्र आशा	एजरा परवीन रहमान	51
शोधयात्रा		
माइलेज वृद्धि हेतु आटोइंजन में सुधार	शिब शंकर मंडल	53
क्या आप जानते हैं?	-	55

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें। व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड IV, **तल** VII, **आर. के. पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष : 26100207, 26105590**

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं : सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं, 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड, ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030), * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुअनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-एच, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) के. के. बी. रोड, नयी कॉलोनी, कमान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक: ₹ 100 द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250, विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश : ₹ 530, यूरोपीय एवं अन्य देश: ₹ 730।

योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने है। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए योजना उत्तरदायी नहीं हैं।

आपकी राय

संपूरक ऊर्जा कार्यक्रम

योजना का मई 2014 अंक जोकि ऊर्जा सुरक्षा पर केंद्रित है, अत्यंत उत्कृष्ट पाठ्य सामग्रियों से परिपूर्ण है। इसके अंतर्गत ऊर्जा के विविध स्रोतों, उनके व्यवस्थापन, नियमन, सुरक्षा आदि विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों को लेकर सारगर्भित, बहुपयोगी जानकारियां प्रस्तुत की गई हैं जिसे पढ़कर ऊर्जा की अनिवार्यता, उनका संरक्षण व उससे संबंधित पर्यावरणीय संरचनाओं के अंतर्गत परिवर्तनरोधी तत्वों के घातक परिणामों से रू-ब-रू हुआ। संपादकीय के माध्यम से ऊर्जा की विशिष्टताओं, मूलभूत उद्देश्यों तथा उससे संबद्ध विभिन्न सकारात्मक-नकारात्मक पक्षों की तथ्यामक विशेषताओं से परिचित कराने का अनूठा प्रयास किया गया है।

जहां तक ऊर्जा संबंधी विकास की बात आती है तो इसके लिए सर्वप्रथम हमें ऊर्जा के विविध उपयोगी-अनुपयोगी पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करने की ज़रूरत है। ऊर्जा का सृजन और उपभोग दोनों ही पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए। इसके लिए नवीन ऊर्जा-शोध तथा इनके मध्य संपूरक ऊर्जा कार्यक्रम के अंतर्गत सौर ऊर्जा उद्गम क्षेत्रों के व्यापक प्रसार और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण संबंधी उपकरणों के बीच आज अधिक समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाने की ज़रूरत है।

राकेश रंजन
गौतम नगर, नई दिल्ली

सबकी आवश्यकता - सबकी समस्या

ऊर्जा सुरक्षा पर केंद्रित *योजना* का मई अंक अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'संपादकीय' में ऊर्जा सुरक्षा के विषय पर सभी को ध्यान देने की आवश्यकता पर बल देना सबको जागरूक बनाने की दिशा में सराहनीय पहल है। लेखक रंजीत का लेख 'मांग ने बढ़ाया अनुसंधान' पढ़ने से जानकारी मिली कि परंपरागत ऊर्जा के भंडार लगातार कम होते जा रहे हैं जबकि ऊर्जा की मांग और खपत दुनियाभर में निरंतर बढ़ रही है। कृष्णकांत जी का लेख 'आर्थिक विकास के बीच ऊर्जा उपलब्धता के प्रश्न' से औद्योगीकरण के बाद विश्व की ऊर्जा आवश्यकता 20 गुना बढ़ने की जानकारी मिली। अन्य लेख भी प्रशंसनीय हैं। वास्तव में ऊर्जा संरक्षण आज हम सबकी आवश्यकता के साथ सबसे बड़ी समस्या बन चुकी है। ऊर्जा से कोई वंचित न हो तो बहुत अच्छी बात होगी।

सुरेश दीवान
रायपुर, छत्तीसगढ़

ऊर्जा सुरक्षा की चुनौतियां

ऊर्जा का उचित प्रयोग, उसके संवर्धन और बेहतर प्रयोगों और भविष्य में इसकी बढ़ती आवश्यकता पर केंद्रित *योजना* का मई अंक पढ़ा। आज आदमी की चाल ऊर्जा की गति पर निर्भर है। जहां इसकी कमी हो गई वहां विकास की गति कुछ थम-सी जाती है।

अंक में शामिल 'भारतीय ऊर्जा सुरक्षा: चुनौतियां एवं संभावनाएं', 'अक्षय ऊर्जा स्रोतों के नियमन की कवायद' तथा 'वर्तमान और भविष्य की चुनौतियों का सामना कैसे हो' जैसे लेखों के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

छैलबिहारी शर्मा इन्द्र
छाता, उ.प्र.

योजनाओं से साक्षात्कार

मुझे अपने मित्र से *योजना* के बारे में पता चला। इस पत्रिका के माध्यम से आप सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं के बारे में जानकारी उपलब्ध करवा रहें हैं। मैने अक्षय ऊर्जा के बारे में सुना है। पर यह अक्षय ऊर्जा है क्या इसके बारे में मुझे जानकारी नहीं थी। आपकी पत्रिका के माध्यम से मुझे इन योजनाओं व अन्य योजनाओं के बारे में जानने का अवसर मिला, इसके लिये धन्यवाद।

मोहन लाल
नाभा, पटियाला

संपादकीय

जनता का अधिकार है

'जस राजा, तस प्रजा।' इसी लोकोक्ति को थोड़ा बदलकर यह भी कहा जाता है 'जस प्रजा, तस राजा।' इस उक्ति से लोकतंत्र में काम कर रही वास्तविक प्रक्रियाओं के बारे में जितना कुछ स्पष्ट होता है उससे कहीं अधिक बातें अस्पष्ट रह जाती हैं और कई विकृतियां सामने आती हैं। कभी-कभी तो लगता है कि लोकतंत्र जिन संस्थाओं तथा एजेंसियों के द्वारा ठोस स्वरूप ग्रहण करता है वे ऐसी रहस्यमयी भूलभुलैया हैं जिनके तमाम दरवाज़े बंद हों। प्रसिद्ध उत्तर आधुनिक दार्शनिक फूको के शब्दों में कहें तो, लोकतंत्र की चुनावी प्रक्रिया एक प्रकार से, 'वहां खिड़कियां खोलती हैं जहां कभी दीवारें हुआ करती थीं।' लोकतंत्र की कई संस्थाओं में जहां जनसाधारण के लिए प्रवेश और परिवर्तन लाना कठिन हो सकता है, वहीं चुनावी प्रक्रिया के रूप में इसका सूत्र जनता के हाथों में ही रहता है। इसी से लोकतंत्र में चुनावी प्रक्रिया का महत्व निहित है। अनेक विफल लोकतंत्रों के खंडहरों और अन्य कई लोकतंत्रों की सफलताओं के अन्वेषण से यह स्पष्ट होता है कि चुनावी प्रक्रिया की जटिल बारीकियों से ही लोकतंत्र की कब्र की ज़मीन तैयार होती है या फिर इसकी पताका लहराने के लिए आवश्यक ऊर्जा और जीवनी शक्ति का प्रवाह सुनिश्चित होता है।

कहा जाता है कि कोई भी मुद्रा उतनी ही मूल्यवान होती है जितना लोग उसे मानते हैं। ठीक यही बात राजनीतिक व्यवस्था पर भी लागू होती है। लोगों का विश्वास अथवा वैधता ही वह आधार मूल्य है जिस पर लोकतांत्रिक प्रणाली काम करती है। निर्वाचन प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी राजनीतिक प्रणाली की वैधता का एक महत्वपूर्ण तत्व है। विश्व में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां निर्वाचन प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी के अभाव के कारण निर्वाचित सरकारों को वैधता नहीं मिल सकी, जिसके कारण उन देशों में गंभीर राजनीतिक संकट पैदा हुए। परंतु भारत लोकतंत्र की सफलता का एक ऐसा उदाहरण है, जहां चाहे वयस्क मताधिकार का प्रश्न हो या मतदाता की आयु में कमी करना या फिर पंचायत स्तर पर स्थानीय शासन की संस्थाओं की जीवंत भागीदारी हमें जीवंत लोकतंत्र के प्रमाण दिखाई देते हैं। हाल के लोकसभा चुनावों में स्वतंत्रता के बाद से अब तक मतदान के सबसे अधिक प्रतिशत ने एक बार फिर भारतीय लोकतंत्र की शक्ति को उजागर किया है।

निर्वाचन प्रक्रिया के कुछ और भी तत्व हैं जो लोकतंत्र की अवधारणा को अर्थ और मूल्य प्रदान करते हैं। बाहरी तौर पर चुनावी प्रक्रिया में जनसाधारण की भागीदारी के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी आंतरिक तत्व हैं जिन्हें निरंतर पोषण की आवश्यकता होती है। स्पष्ट है कि बिना किसी लोभ अथवा भय के, खुलेपन, पारदर्शी, स्वैच्छिक भागीदारी, विचारों की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के वातावरण में ही लोकतंत्र पनप सकता है। ऐसी प्रणाली सुनिश्चित करने का भार देश की चुनावी प्रक्रिया के कंधों पर टिका होता है। इसके अतिरिक्त एक सुदृढ़ लोकतंत्र में ज़मीनी राजनीति के जंजाल में उलझे बिना लोकतंत्र के मौलिक मूल्यों की रक्षा में सक्षम मज़बूत संस्थाओं की मौजूदगी की भी आवश्यकता होती है। न्यायपालिका, मीडिया और नौकरशाही कुछ ऐसी ही संस्थाएं हैं जो न केवल लोकतंत्र के ढांचे की बल्कि उसकी आत्मा की भी रक्षा करते हैं और उन्हें अनुप्राणित करते हैं। लोकतंत्र को कुछ गिनी-चुनी संस्थाओं और संरचनाओं के निकाय के रूप में देखना गलत होगा। वास्तव में यह एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया है जिसमें जनता की आकांक्षाओं को परिलक्षित करने वाले विचारों और गतिविधियों के निरंतर निषेचन की आवश्यकता होती है। शायद यह कहना वास्तविकता के करीब होगा कि लोकतंत्र एक सर्वदा अधूरी परियोजना है।

अतएव, लोकतंत्र की दृढ़ता के व्यापक संदर्भ में, चुनावी सुधार इस परियोजना के मूल में है। भारतीय लोकतंत्र को अपनी कमजोरियों तथा विकृतियों से मुक्त होने के लिए अभी लंबा रास्ता तय करना है। हमारे राजनेताओं ने अनेक सार्वजनिक मंचों से दृढ़तापूर्वक इन सुधारों की पैरवी की है जिससे आशा बलवती हुई है। लोकतंत्र की जड़ों को खोखला बनाने वाले भ्रष्टाचार, धनबल और बाहुबल के राक्षसों से निपटना जरूरी हो गया है। कुछ भी हो देश को अपने नैतिक आत्मबल का प्रयोग कर इस रोग की सही औषधि, भले ही कड़वी हो, ढूंढ़नी पड़ेगी, पीनी पड़ेगी। हमारी अमूल्य राजनीतिक प्रणाली की घातक कमज़ोरियों का सीधे-सीधे सामना कर ही हम लोकतंत्र की आत्मा के शुद्ध स्वरूप की रक्षा कर सकते हैं और उसके विकास की आशा कर सकते हैं। लोकतंत्र समाज के निर्बलतम व्यक्ति के जीवन को स्पर्श करता है और उसके जीवन में परिवर्तन लाने वाले अमृत के रूप में काम करता है। यह लोगों का अधिकार है। ❑

संघ/राज्य लोक सेवा आयोग (प्रारम्भिक) परीक्षा हेतु

प्रथम प्रश्न-पत्र

1523	सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययन
1524	सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययनः हल प्रश्न–पत्र
847	भारत का इतिहास एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन
849	भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान
A1076	भूगोल
850	विश्व एवं भारत का भूगोल
A1091	भारतीय अर्थव्यवस्था
851	भारतीय अर्थव्यवस्था
A1089	सामान्य विज्ञान
853	सामान्य विज्ञान
172	भारतीय कला एवं संस्कृति
A1090	पारिस्थितिकी, पर्यावरण, जैव–विविधता एवं विज्ञान–प्रौद्योगिकी
1393	सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययनः प्रैक्टिस वर्क-बुक

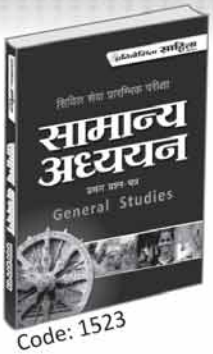

Code: 1523

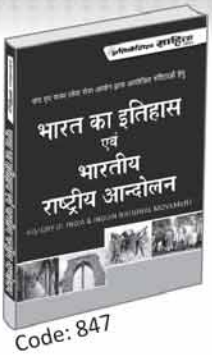

Code: 847

द्वितीय प्रश्न-पत्र

A1077	सिविल सर्विसेज एप्टीट्यूड टेस्ट
A1080	तार्किक एवं विश्लेषणात्मक योग्यता
A1078	समंक व्याख्या एवं पर्याप्तता
A1096	मौलिक आंकिक योग्यता
852	सामान्य मानसिक योग्यता
766	सामान्य बुद्धि एवं तर्कशक्ति परीक्षण
A723	तर्कशक्ति परीक्षण
A939	सामान्य बुद्धि एवं तर्क परीक्षण

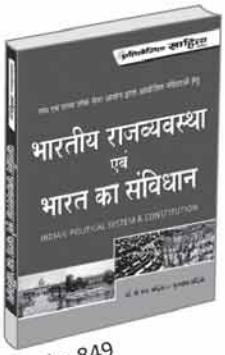

Code: 849

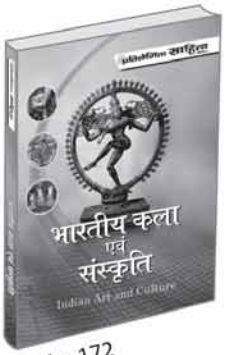

Code: 172

Code: A1077

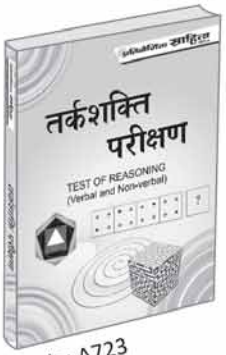

Code: A723

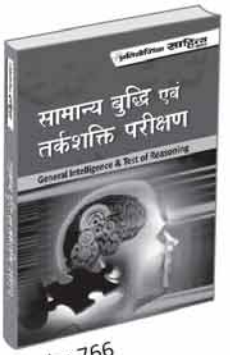

Code: 766

मुख्य परीक्षा हेतु

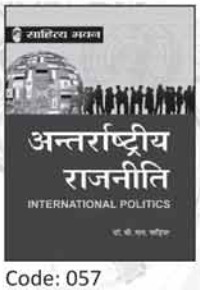

Code: 057

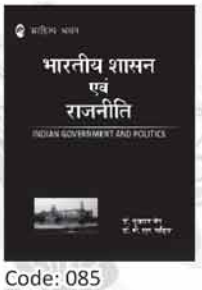

Code: 085

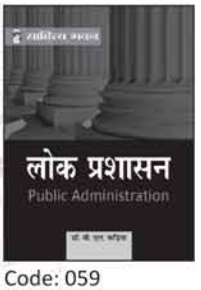

Code: 059

Code: 1333

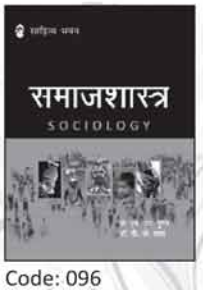

Code: 096

Code: 298

प्रतियोगिता साहित्य सीरीज

For More information Call : +91 89585 00222 info@psagra.in www.psagra.in

YH - 80/2014

चुनाव सुधारों का इतिहास

एस.वाई. क़ुरैशी

निर्वाचन आयोग ने चुनावों में सुधार के लिये अपनी ओर से अनेक सिफ़ारिशें की हैं और कई अनुशासनात्मक प्रस्ताव दिए हैं। सरकार के पास दस से बीस वर्षों से सुधार के ये सभी प्रस्ताव लंबित हैं। इस बीच, राजनीतिक प्रणाली के प्रति लोगों का भरोसा कम होता जा रहा है। यदि लोकतंत्र के प्रति लोगों के गिरते भरोसे का समाधान निकालने के लिये सरकार गंभीर है तो उसे तत्काल क़दम उठाने होगें ताकि स्थिति नियंत्रण से बाहर न जाने पाए। दीवार पर लिखी इबारत बिल्कुल स्पष्ट है। हमें केवल उसे देखकर समझने की ज़रूरत है

भारत में चुनाव दिनोंदिन सुदृढ़ होते गए हैं। चुनावी सुधारों की लंबी शृंखला के कारण भारत की निर्वाचन प्रणाली सुदृढ़ हुई है। फिर भी, अभी भी कुछ ऐसे मुद्दे हैं, जिनका समाधान किया जाना जरूरी है।

निर्वाचन कानून में नयी चुनौतियों और नयी परिस्थितियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये अनेक संशोधन किये गए हैं। 1989 में मतदाताओं की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष करना, राज्यसभा चुनावों में खुले मतपत्र से मतदान और 2003 में सशस्त्र बलों और अर्द्ध सैनिक बलों के मतदाताओं को प्रॉक्सी (प्रतिनिधि) के जरिये मतदान करने का अधिकार देना कुछ अति महत्वपूर्ण संशोधन हैं। मतदाता सूची में प्रवासी भारतीय नागरिकों के नाम दर्ज़ कराने का प्रावधान 2011 के ताज़े संशोधन में किया गया है। निर्वाचन आयोग को इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) के उपयोग का अधिकार देने और पुलिस अधिकारियों सहित चुनाव कराने वाले सभी अधिकारियों पर अनुशासनात्मक कार्रवाई का अधिकार आयोग को देने से भारत के निर्वाचन आयोग को शक्ति मिली है। मुद्रित मतदाता सूची का स्थान अब कंप्यूटरीकृत फोटो मतदाता सूची ने ले लिया है। मतदाता फोटो पहचान-पत्र (ईवीआईसी) अब सभी नागरिकों की संजोई हुई संपत्ति बन चुकी है।

न्यायिक समर्थन

न्यायालयों ने भी कानून की सकारात्मक व्याख्या के माध्यम से आयोग के हाथ मज़बूत किये हैं। पहला महत्वपूर्ण निर्णय 1952 में ही एन.पी. रामास्वामी बनाम निर्वाचन अधिकारी नमम्मक्ल के मामले में आया, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि चुनाव प्रक्रिया पूरी होने तक, चुनाव अधिकारियों के अतिरिक्त, निर्वाचन प्रक्रिया पर प्रश्न उठने पर लगा संवैधानिक प्रतिबंध (अनुच्छेद 329 बी) अपने आप में पूर्ण है। शीर्ष न्यायालय ने 1978 के मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य के मामले में इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा कि आयोग और उनके अधिकारियों द्वारा उठाये गए चुनावी कदमों को सीमित चुनौती देने पर लगा प्रतिबंध, संपूर्ण प्रतिबंध है।

1995 में कॉमन कॉज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (भारतीय संघ) एवं अन्य के मामले में, न्यायालय ने निर्देश दिया कि राजनीतिक दलों को अपना आयकर विवरण जमा करना होगा। उच्चतम न्यायालय ने 2003 में, एक अन्य महत्पूर्ण निर्णय में कहा कि निर्वाचकों को अपने प्रत्याशी के बारे में जानने का अधिकार है। उन्हें आपराधिक मामलों के पूर्ण विवरण, परिसंपत्तियों और सैनिक योग्यता के ब्यौरों वाला शपत्र-पत्र देना होगा।

निर्वाचन आयोग के अभिनव क़दम

अनेक सुधार स्वयं निर्वाचन आयोग की ओर से किये गए हैं। राजनीतिक दलों द्वारा प्रवर्तित आदर्श आचार संहिता को निर्वाचन आयोग ने संहिताबद्ध किया और 1990 के दशक से उस पर सख्ती से अमल करना शुरू कर दिया। चुनावी कानून में राजनीतिक दलों के पंजीकरण और मान्यता तथा उन्हें चुनाव चिह्न आवंटित करने के बारे में कोई प्रावधान नहीं किया गया है। परंतु आयोग ने 1951-52 के पहले आम चुनाव के समय स्वयं ही पहल कर राजनीतिक दलों को मान्यता देने और उन्हें चुनाव चिह्न आवंटित करने का काम हाथ में लिया। बाद में निर्वाचन आयोग ने, 1968 में चुनाव चिह्न (आरक्षण

एवं आवंटन) आदेश जारी कर निर्देशों का संचित रूप जारी किया। सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में आयोग ने मशीनों के जरिये मतदान करने की संभावना को टटोलना शुरू किया। अब 2000 के बाद से, सभी लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव मतदान मशीनों के जरिये ही कराए जा रहे हैं। 1990 के दशक के अंत में, आयोग ने सभी निर्वाचन क्षेत्रों की मतदाता सूचियों का कंप्यूटरीकरण कर दिया। मतदाता सूचियों की विश्वसनीयता में और सुधार लाते हुए आयोग ने देश के प्रत्येक मतदान केंद्र पर बूथ स्तर अधिकारी (बीएलओ) नियुक्त करने की प्रथा प्रारंभ की। इस प्रक्रिया में राजनीतिक दलों की घनिष्ठ सहभागिता के लिये प्रत्येक मान्यताप्राप्त दल को बीएलए (बूथ लेवल एजेंट) नियुक्त करने का भी अधिकार दिया गया ताकि बीएलओ की निष्पक्षता पर अंकुश रहे। आयोग ने फर्जी मतदान रोकने के लिये 1993 में सभी मतदाताओं के लिए फोटो वाले पहचान-पत्र की प्रथा प्रारंभ की।

1990 के दशक में ही, आयोग ने चुनावी प्रक्रिया की प्रभावी निगरानी के लिये केंद्रीय प्रेक्षकों एवं केंद्रीय पुलिस बलों की तैनाती के साथ-साथ वीडियोग्राफी और संवेदनशील मतदान केंद्रों पर सूक्ष्म (माइक्रो) प्रेक्षकों को तैनात करना शुरू किया।

उभरती चिंता

अभी भी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनके बारे में जनसाधारण, स्वयंसेवी व सामाजिक संगठन, सामाजिक कार्यकर्ता और राजनीतिक दल चिंता जताते रहे हैं। मोटे तौर पर तीन तरह के सुधारों का प्रस्ताव है: (क) वे जो निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता को और अधिक सुदृढ़ बनाएंगे (ख) वे जो राजनीति को स्वच्छ बनाने में मदद करेंगें और (ग) वे जो राजनीति कार्यप्रणाली को और अधिक पारदर्शी रूप देंगें।

(क) भारतीय निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता का सुदृढ़ीकरण

मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति केंद्रीय मंत्रिमंडल के परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

यह तथ्य, कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति सरकार करती है अपने आप में ही नियुक्त व्यक्ति की निष्पक्षता के प्रति संदेह का कारण बन सकता है। इस महत्वपूर्ण कार्यालय में नियुक्ति एक निर्वाचक मंडल के साथ व्यापक विचार-विमर्श पर आधारित होनी चाहिए। परंतु यह केवल नये निर्वाचन आयुक्त के चयन के समय तक ही सीमित होना चाहिये। मुख्य निर्वाचन आयुक्त के पद पर प्रोन्नति केवल वरिष्ठता के आधार पर ही होनी चाहिये। उच्चतम न्यायालय में प्रधान न्यायाधीश के मामले में वरिष्ठता को जो वरीयता दी जाती है, वही प्रक्रिया निर्वाचन आयोग में भी होनी चाहिये। पदमुक्त हो रहे मुख्य निर्वाचन आयुक्त को नये आयुक्त के चयन और नियुक्ति के लिए बनाए जाने वाले निर्वाचक मंडल का सदस्य बनाना उपयोगी होगा। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को महाभियोग के सिवाय किसी और तरह से नहीं हटाया जा सकता। इसी तरह की व्यवस्था अन्य निर्वाचन आयुक्तों के लिये भी किया जाना आवश्यक है।

1990 के दशक के अंत में, आयोग ने सभी निर्वाचन क्षेत्रों की मतदाता सूचियों का कंप्यूटरीकरण कर दिया। मतदाता सूचियों की विश्वसनीयता में और सुधार लाते हुए आयोग ने देश के प्रत्येक मतदान केंद्र पर बूथ स्तर अधिकारी (बीएलओ) नियुक्त करने की प्रथा प्रारंभ की। इस प्रक्रिया में राजनीतिक दलों की घनिष्ठ सहभागिता के लिये प्रत्येक मान्यताप्राप्त दल को बीएलए (बूथ लेवल एजेंट) नियुक्त करने का भी अधिकार दिया गया ताकि बीएलओ की निष्पक्षता पर अंकुश रहे। आयोग ने फर्जी मतदान रोकने के लिये 1993 में सभी मतदाताओं के लिए फोटो वाले पहचान-पत्र की प्रथा प्रारंभ की।

(ख) राजनीति की स्वच्छता

राजनीति का अपराधीकरण: राजनीति के अपराधीकरण से चिंतित, निर्वाचन आयोग ने 1998 में एक प्रस्ताव सरकार को भेजा जिसका उद्देश्य गंभीर अपराधों के आरोपी व्यक्ति को चुनाव में भाग लेने से मना करना था। अनेक राजनीतिक दलों ने इस आधार पर इस प्रस्ताव का विरोध किया कि विरोधियों द्वारा उनके प्रत्याशियों के विरुद्ध झूठे आपराधिक मामले दायर किये जा सकते हैं। सत्तारूढ़ दल इस हथकंडे द्वारा विरोधियों की चुनाव में जीत की संभावना निरस्त कर सकते हैं। यह चिंता उचित ही है। निर्वाचन आयोग ने इससे बचाव के लिये तीन उपाय सुझाये हैं: (1) सभी आपराधिक मामले चुनाव लड़ने से नहीं रोक सकेंगे, केवल हत्या, डकैती, बलात्कार, अपहरण अथवा नैतिक चरित्रहीनता जैसे मामलों के आरोपी को चुनाव नहीं लड़ने दिया जाएगा। (2) मामला चुनावों के कम से कम 6 महीने पूर्व दायर हुआ होना चाहिए और (3) आरोप न्यायालय द्वारा दायर होना चाहिये। किसी व्यक्ति को चुनाव लड़ने से रोकने का औचित्य व्यापक जनहित में ही होना चाहिए। इस प्रस्ताव के विरोधियों का तर्क था कि देश का कानून कहता है कि जब तक किसी व्यक्ति का अपराध सिद्ध न हो जाए, वह निर्दोष होता है।

इस तर्क के विपरीत मेरा कहना है कि जेलों में बंद लोगों में से दो तिहाई पर अभी मुकद्मा चल ही रहा है और इसलिये, वे निर्दोष हैं। फिर भी वे जेलों में बंद हैं और वे स्वतंत्रता, जीने की आज़ादी, व्यवसाय की स्वतंत्रता और सम्मान के अधिकार से वंचित है। यदि किसी अभियोगाधीन व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को निलंबित किया जा सकता है, तो फिर चुनाव लड़ने के अधिकार पर अस्थायी रोक लगाने पर इतना विरोध क्यों? वैसे भी चुनाव लड़ने का अधिकार केवल संवैधानिक अधिकार ही है।

वास्तव में यह निराशाजनक ही है कि सरकार और संसद हमारी निर्वाचन प्रणाली को साफ-सुथरा बनाने के इस अहम उपाय पर अपने पैर पीछे खींच रही है। संसद और राज्यों के विधानमंडलों पर लगे दाग को मिटाने की दिशा में यह निर्णायक कदम हो सकता है। इस सुधार से उन नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं का मुंह बंद किया जा सकता है जो सभी नेताओं पर लांछन लगाया करते हैं।

(ग) राजनीतिक दलों की पारदर्शिता बढ़ाना

राजनीतिक दलों का पंजीकरण और पंजीकरण रद्द करने का मामला: जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के वैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत राजनीतिक दलों का पंजीकरण निर्वाचन आयोग में होता है। उपर्युक्त अधिनियम की धारा 29ए के तहत किसी भी राजनीतिक दल के पंजीकरण वैध आवेदन की वैधानिक आवश्यकताओं में से एक है कि दल को भारत के संविधान के प्रति निष्ठा और समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता

एवं लोकतंत्र तथा भारत की एकता, प्रमुखता और अखंडता को बनाए रखने का वचन देना होगा।

राजनीतिक दल, यद्यपि पंजीकरण के समय इन संवैधानिक प्रावधानों को मानने का वचन देते हैं, परंतु निर्वाचन आयोग के पास ऐसा कोई कानूनी अधिकार नहीं है कि इस वचन का उल्लंघन करने की स्थिति में उनके विरुद्ध कोई दंडात्मक कार्रवाई कर सके अथवा उनका पंजीकरण रद्द कर सके। आयोग ने कानून में संशोधन का प्रस्ताव दिया हुआ है जिसमें आयोग को राजनीतिक दलों का पंजीकरण रद्द करने का अधिकार देने की बात कही गयी है।

अंतर्दलीय लोकतंत्र

किसी भी राजनीतिक दल के पंजीकरण की शर्तों में निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाने और निर्धारित समय पर पार्टी, पदों और समितियों का लोकतांत्रिक ढंग से चुनाव कराने की प्रतिबद्धता प्रमुख है। परंतु निर्वाचन आयोग उनकी आंतरिक चुनावी प्रक्रिया की निगरानी नहीं करता।

राजनीतिक दलों के लेखा खातों में पारदर्शिता

वर्तमान कानून में प्रत्याशियों के चुनावी व्यय की सीमा तो तय की गई है, परंतु राजनीतिक दलों की नहीं। इसके साथ ही, धन जमा करने और व्यय करने के बारे में कोई नियम-कानून नहीं है और न ही उनके लेखा-खाते सार्वजनिक किये जाते हैं कि कोई भी उसे देख सके। पारदर्शिता लाने के लिये आयोग ने प्रस्ताव किया है कि राजनीतिक दलों के खातों का लेखा-जोखा परीक्षण निर्वाचन आयोग द्वारा निर्दिष्ट चार्टर्ट एकाउंटेंट से ही कराया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त इन अपेक्षित खातों को सार्वजनिक कर दिया जाना चाहिये।

अस्वीकार करने का अधिकार

हाल ही में कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने नापंसद प्रत्याशियों को अस्वीकार करने का अधिकार की मांग की है। इसके लिये 'नोटा' (उपर्युक्त में से कोई नहीं) का प्रावधान लागू करने की मांग की जा रही थी जो उच्चतम न्यायालय ने 2013 में स्वीकार कर लिया। परंतु अस्वीकार करने का अधिकार अर्थात 'राइट टू रिजेक्ट' लागू नहीं किया।

'उपर्युक्त में कोई नहीं' (नोटा) विकल्प

अस्वीकार करने के अधिकार के इस्तेमाल के लिये जो तरीका अपनाया गया है उसके लिये ईवीएम (इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीन) में उपर्युक्त में से कोई नहीं (नोटा) के विकल्प वाले बटन की व्यवस्था की गई है।

यहां यह जानना महत्वपूर्ण है कि 'नोटा' अस्वीकार करने के अधिकार का अनुमोदन नहीं है। यदि 99 मतदाता किसी उम्मीदवार के लिये वोट देता है, तो निर्वाचन आयोग के लिये वही उम्मीदवार विजयी है। 'नोटा' के 99 वोट महज कोरे अथवा अवैध वोट माने जाएंगें। 'नोटा' विकल्प के लिये निर्वाचन आयोग के प्रस्ताव का उद्देश्य तटस्थ अथवा मतदान नहीं करने की गोपनीयता सुनिश्चित करना था।

वर्तमान कानून में प्रत्याशियों के चुनावी व्यय की सीमा तो तय की गई है, परंतु राजनीतिक दलों की नहीं। इसके साथ ही, धन जमा करने और व्यय करने के बारे में कोई नियम-कानून नहीं है और न ही उनके लेखा-खाते सार्वजनिक किये जाते हैं कि कोई भी उसे देख सके। पारदर्शिता लाने के लिये आयोग ने प्रस्ताव किया है कि राजनीतिक दलों के खातों का लेखा-जोखा परीक्षण निर्वाचन आयोग द्वारा निर्दिष्ट चार्टर्ट एकाउंटेंट से ही कराया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त इन अपेक्षित खातों को सार्वजनिक कर दिया जाना चाहिये।

वापस बुलाने का अधिकार

निर्वाचन प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार एक और चुनावी सुधार है। जिसकी मांग अन्ना हजारे जैसे सामाजिक कार्यकर्ता उठाते रहे हैं। सारांश में, वापस बुलाने का अधिकार अर्थात राइट टू रिकॉल, एक ऐसी व्यवस्था है जिसके जरिये मतदाता निर्वाचित सांसद अथवा विधायक को अपदस्थ कर सकते हैं। परंतु इसमें इस बात की बड़ी मज़बूत संभावना है कि पराजित उम्मीदवार चुनाव हारने के तुरंत बाद ही यह रास्ता अख्तियार कर सकते हैं। इस प्रकार की स्थिति में निर्वाचित जनप्रतिनिधि को जमने का जरा भी मौका नहीं मिलेगा।

अनिवार्य मतदान

एक और चुनाव सुधार जिसकी प्रायः चर्चा की जाती है, वह है अनिवार्य मतदान। विशेषकर शहरी क्षेत्रों में मतदाताओं की उदासीनता को देखते हुए अनिवार्य मतदान की मांग की जाती रही है। मेरा हमेशा से यह विचार रहा है कि अनिवार्यता और लोकतंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते। अतः आयोग का यह सुविचारित दृष्टिकोण है कि शिक्षा और जागरुकता से मतदाताओं की भागीदारी बढ़ायी जा सकती है। यह तथ्य 2010 के बाद हुए आम चुनावों से भलीभांति स्पष्ट होता है। अभी हाल में हुए आम चुनाव (2014) में तो कुछेक निर्वाचन क्षेत्रों में 80 प्रतिशत से भी अधिक मतदान हुए हैं। इन उपायों के फलस्वरूप देश के साठ वर्षों के चुनावी इतिहास में इस बार मतदाताओं की भागीदारी सबसे अधिक रही है। मेरा हमेशा से यह विचार रहा है कि ज़बरदस्ती के बजाय अभिप्रेरण और सुविधाओं से इस मुद्दे का समाधान निकाला जाना चाहिये। हाल के आम चुनावों से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

एफपीटीपी प्रणाली की प्रासंगिकता

एक और चिंता है जो कम मतदान से पैदा होती है। कुल मतदान का 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक मत पाने वाले उम्मीदवार को भी निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। इससे एफपीटीपी प्रणाली की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न लग रहा है।

लोकसभा और राज्यों के विधानमंडलों के निचले सदनों का निर्वाचन एक सदस्यीय संसदीय और विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष मतदान के जरिये होता है। इन चुनावों में 'फर्स्ट पास्ट दि पोस्ट' (एफपीटीपी) जारी जिसको सबसे अधिक वोट मिलेगें। (यह एक वोट भी हो सकता है) वही विजयी होगा, की प्रणाली अपनायी जाती है। राज्यसभा और विधान परिषदों (राज्यों में) के चुनाव में सकल हस्तांतरणीय वोट के माध्यम से आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली में मतदाता अपने निर्वाचन क्षेत्र से खड़े उम्मीदवारों में से केवल एक उम्मीदवार को वोट देते हैं। इन उम्मीदवारों में से जिस किसी को सबसे अधिक वोट प्राप्त होते हैं, उसे ही विजयी घोषित किया जाता है। विजयी प्रत्याशी को कितने प्रतिशत मत मिलें, इसका कोई महत्व नहीं है। विजयी उम्मीदवार को कुल मतदान का पूर्ण बहुमत (50 प्रतिशत) मिल

भी सकता है और नहीं भी। यदि दो उम्मीदवारों को मिले वोटों की संख्या एक समान होती है तो उनमें से विजयी उम्मीदवार की घोषणा लॉटरी (पर्ची डालकर) के जरिये की जाती है।

एफपीटीपी प्रणाली के निम्नलिखित लाभ हैं:

- मतदाताओं के लिये समझने में यह सरल है।
- मतगणना सरल है।
- विजयी प्रत्याशियों के नामों की घोषणा तुरंत हो जाती है।
- मतदाता अपनी पंसद का प्रतिनिधि चुन सकते हैं।
- प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र हेतु एक चिह्नित अभिन्न प्रतिनिधि होता है जो अपने मतदाताओं के प्रति जवाबदेह होता है।

एफपीटीपी प्रणाली के विरोधी आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू करने की आवाज़ उठाते रहे हैं, परंतु उन्होंने इसका कोई विवरण नहीं दिया है। यह आवाज़ 2014 के आम चुनाव के बाद और तेज़ होती जा रही है। क्योंकि इस चुनाव में बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) को 20 प्रतिशत वोट मिलने के बावजूद एक भी सीट नहीं मिली है।

- सभी उम्मीदवारों को निर्वाचन क्षेत्र में अपने प्रति समर्थन की जानकारी हो जाती है।

इस प्रणाली ने केंद्र और राज्यों में आमतौर पर स्थिर सरकारें दी हैं।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली

एफपीटीपी प्रणाली के विरोधी आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू करने की आवाज़ उठाते रहे हैं, परंतु उन्होंने इसका कोई विवरण नहीं दिया है। यह आवाज़ 2014 के आम चुनाव के बाद और तेज़ होती जा रही है। क्योंकि इस चुनाव में बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) को 20 प्रतिशत वोट मिलने के बावजूद एक भी सीट नहीं मिली है। इससे विसंगति की स्थिति उत्पन्न होती प्रतीत होती है।

पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के कई रूप हैं। इसका एक सच है एकल हस्तांतरणीय वोट प्रणाली जो राज्यसभा और राज्यों की विधान परिषदों के चुनावों में अपनायी जाती है।

चुनावी लाभ के लिये धर्म का दुरुपयोग चिंता का एक और क्षेत्र है

लोकसभा में 1994 में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन का एक प्रस्ताव पेश किया गया था। जिसमें यह प्रावधान था कि राजनीतिक दलों द्वारा धर्म के दुरुपयोग के मामलों पर उच्च न्यायालय में सवाल उठाये जा सकते हैं। आयोग ने प्रस्ताव किया है कि उस विधेयक के प्रावधानों पर पुन:विचार होना चाहिये, क्योंकि धार्मिक उन्माद निष्पक्ष निर्वाचन के लिए एक गंभीर खतरा है और इससे सख्ती से ही निपटने की आवश्यकता है। सांप्रदायिक तनाव पैदा करने वाले घृणास्पद भाषणों के साथ भी कठोतरता से निपटा जाना चाहिये।

'पेड न्यूज' को चुनावी अपराध बनाने के लिये कानूनों में संशोधन

पेड न्यूज, अर्थात पैसे देकर ख़बर प्रकाशित या प्रसारित करवाना, हाल की पेशकश है, जो जोर पकड़ता जा रहा है। इसको रोकने के लिये आयोग ने 1951 के जनप्रतिनिधित्व कानून में संशोधन का प्रस्ताव किया है। आयोग का प्रस्ताव है कि जनप्रतिनिधित्व कानून में यह प्रावधान सम्मिलित किया जाना चाहिए कि किसी उम्मीदवार के चुनाव की संभावनाओं को बढ़ाने अथवा घटाने के लिये 'पेड न्यूज' के प्रकाशन अथवा प्रसारण में सहायता देने वाले कृत्य को जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के अंतर्गत चुनावी अपराध घोषित किया जाना चाहिये जिसके लिए न्यूनतम दो वर्ष कारावास की सजा होनी चाहिये।

चुनावी अपराधों की सजा बढ़ायी जानी चाहिये

चुनाव में भेजा गया रिश्वत और दबाव, भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धाराओं 171बी और 171सी के तहत चुनावी अपराध है। ये अपराध असंज्ञेय अपराध हैं, जिसके कारण ये प्रावधान वस्तुत: निष्प्रभावी हो गये हैं।

धारा 171जी के अंतर्गत चुनाव परिणाम प्रभावित करने के आशय से चुनाव संबंधी गलत विवरण देना एक ऐसा अपराध माना गया है। जिसके लिये केवल जुर्माने की सजा का प्रावधान है।

धारा 171एच में प्रावधान है कि किसी उम्मीदवार की चुनावी संभावनाओं की उन्नति के लिये व्यय करना अथवा व्यय के लिये अधिकृत करना एक अपराध है। परंतु इस अपराध के दंड स्वरूप ₹ 500 के जुर्माने का प्रावधान किया गया है। साठ वर्ष पूर्व यह राशि इस अपराध को रोकने के लिये पर्याप्त होगी। परंतु आज यह हास्यास्पद लगती है।

इन सजाओं का प्रावधान 1920 के किया गया था। उपर्युक्त धाराओं के अंतर्गत अपराधों की गंभीरता को देखते हुए निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनावों के लिये सभी चार धाराओं में दंड के प्रावधानों में वृद्धि की जानी चाहिए और इन्हें संक्षेय बनाया जाना चाहिये।

सरकार के कार्यकाल के अंतिम छह महीनों में उसकी उपलब्धियों के विज्ञापन पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिये। स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों और भोजन संबंधी उपायों जैसे कार्यक्रमों के जरूरी विज्ञापनों/सूचना के प्रसार को इस प्रतिबंध से मुक्त रखा जा सकता है।

सरकार के कार्यकाल के अंतिम छह महीनों में उसकी उपलब्धियों के विज्ञापन पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिये। स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों और भोजन संबंधी उपायों जैसे कार्यक्रमों के जरूरी विज्ञापनों/सूचना के प्रसार को इस प्रतिबंध से मुक्त रखा जा सकता है।

पिछले चार दशक में राष्ट्रीय स्तर की सात समितियां और आयोग बनाए गए, जिन्होंने राजनीतिक प्रणाली को स्वच्छ करने के लिये अनेक सुझाव दिए है अथवा चुनाव सुधारों की पैरवी की है। निर्वाचन आयोग ने भी अपनी ओर से अनेक सिफ़ारिशें की हैं और कई अनुशासनात्मक प्रस्ताव दिए हैं। सरकार के पास दस से बीस वर्षों से सुधार के ये सभी प्रस्ताव लंबित हैं। इस बीच, राजनीतिक प्रणाली के प्रति लोगों का भरोसा कम होता जा रहा है। यदि लोकतंत्र के प्रति लोगों के गिरते भरोसे का समाधान निकालने के लिये सरकार गंभीर है तो उसे तत्काल क़दम उठाने होंगे ताकि स्थिति नियंत्रण से बाहर न जाने पाए। दीवार पर लिखी इबारत बिल्कुल स्पष्ट है। हमें केवल उसे देखकर समझने की ज़रूरत है। ❑

(लेखक पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त हैं। चुनाव खर्च नियंत्रण और मतदाता जागरुकता के संबंध में चुनाव आयोग की अनेकानेक नई पहलों का श्रेय उन्हें जाता है। उन्हें हाल में स्टॉकहोम स्थित अंतर्राष्ट्रीय लोकतंत्र एवं चुनाव सहयोग संस्थान के सलाहकार बोर्ड में शामिल किया गया है। ई-मेल : sykuraishi@gmail.com)

भारतीय लोकतंत्र एवं चुनाव सुधार की आवश्यकता

अनिल वर्मा

''चुनाव और उसका भ्रष्टाचार, अन्याय, धनबल की ताकत और तानाशाही और प्रशासन की अक्षमता, जीवन को नर्क बना देगी।''

- सी. राजगोपालाचारी

16वीं लोकसभा चुनाव के सुचारू संचालन के लिए निर्वाचन आयोग बधाई का पात्र है किंतु लोग देश में 30-40 दिनों तक चलने वाली चुनाव प्रक्रिया पर सवाल उठाते हैं कि यह किस प्रकार का लोकतंत्र है जहां मतदान सुरक्षा बलों की छत्रछाया के बिना नहीं किया जा सकता। सत्य तो यह है कि चुनावी प्रक्रिया में यदि सुरक्षा व्यवस्था न हो तो बूथ कैप्चरिंग, मतदाताओं के साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती/हिंसा इत्यादि होने की पूरी संभावना है। क्या ऐसे चुनाव जहां आम आदमी को राजनीतिक दल रुपये, शराब, क़ीमती तोहफों से खरीदते हैं, स्वतंत्र और निष्पक्ष मतदान कहा जा सकता है

भारत की स्वतंत्रता से 25 वर्ष पूर्व, 1922 में, श्री सी. राजगोपालाचारी ने आज की स्थिति का पूर्वानुमान लगाते हुए उपरोक्त विचार अपनी कारागार की डायरी में लिखे थे। सन् 1947 से 1960 के दशक तक भारतीय शासन की बागडोर, राष्ट्र के प्रमुख राजनीतिक दल कांग्रेस के हाथ में थी, जिसमें अत्यंत काबिल, परिपक्व व नैतिकता के आधार पर चलने वाले दिग्गज नेता थे। डॉ. भीमराव अंबेडकर, आचार्य कृपलानी, पंडित नेहरू, सरदार पटेल एवं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जैसे नेताओं ने भारत में लोकतंत्र की नींव रखी और भारतीय संविधान की रचना की।

निस्संदेह आज़ादी के बाद के प्रारंभिक दशकों में, भारत ने अर्थव्यवस्था, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में काफी प्रगति की। किंतु इसके साथ-साथ राजनीतिक प्रणाली की पवित्रता में भी लगातार गिरावट आई है। 70 के दशक में यह राजनीतिक दलों में आपराधिक पृष्ठभूमि के कर्मियों के प्रवेश और राजनीति में धन और बाहुबल के उदय से स्पष्ट होता है। इससे लोकतंत्र में सामाजिक व आर्थिक असमानता बढ़ी और जाति, धर्म, समुदाय पर आधारित राजनीति (वोट बैंक की राजनीति) का लोकतंत्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

राजनीतिक स्तर का पतन

वर्तमान समय में काले धन का चुनावी प्रक्रिया में व्यापक रूप से उपयोग हो रहा है। चुनाव के दौरान अत्यधिक धन व बल प्रयोग, चुनावी परिणामों को विकृत कर देता है। राजनीति में अपराधियों के प्रवेश के कई कारणों में से एक राजनीतिक संरक्षण के माध्यम से न्यायिक कार्यवाही से बचने या उसे विकृत करने की इच्छा थी। मौजूदा स्वरूप में देश का कानून, राजनीति के आपराधीकरण के बढ़ते कैंसर को रोकने में असमर्थ है।

भारत में राजनीतिक दलों के नियंत्रण के लिए कोई कानून नहीं है। साथ ही राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र एवं पैसे की आमद और खर्चे के बारे में पारदर्शिता नहीं है। इसका एक कारण न्यायिक विलंबता और अक्षम कानूनी अव्यवस्था है। राजनीतिक दलों का 75 प्रतिशत वित्त पोषण अज्ञात सूत्रों से है और केवल 9 प्रतिशत (20,000 रुपये से ऊपर की आमदनी राशि) की जानकारी जनता को उपलब्ध है। राजनीतिक दल और उम्मीदवार आमतौर पर खर्चा वास्तविक रकम से कम दिखाते हैं।

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) के अनुसंधान और विश्लेषण से चुनाव प्रणाली में धन और बाहुबल के बीच एक सीधा संबध देखने को मिलता है। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले एक अमीर उम्मीदवार की एक 'निष्कपट उम्मीदवार' की तुलना में चुनाव जीतने की संभावना लगभग दोगुनी होती है। 15वीं लोकसभा में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले 30 प्रतिशत सांसद थे और उनकी घोषित औसत संपत्ति 5.36 करोड़ रुपये थी। 16वीं लोकसभा में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले सांसदों की संख्या बढ़कर 34 प्रतिशत हो गई और उनकी घोषित औसत संपत्ति 14.70 करोड़ रुपये है। जब राजनीतिक दल कॉरपोरेट/बड़े व्यापारियों से बड़े पैमाने पर धन प्राप्त करते हैं, तो ज़ाहिर है कि सत्ता में आने के उपरांत यही राजनीतिक दल इन व्यापारियों के पक्ष में नीति निर्माण अथवा फ़ैसलें कर सकते हैं।

उपरोक्त स्थिति के कारण कई गंभीर प्रश्न उठते हैं। हम किस मोड़ पर खड़े हैं और हमें कौन-सी राह पकड़नी है? राजनीतिक दलों के हितों को आघात पहुंचाने वाले परिवर्तनों/सुझावों को वे आसानी से क्रियान्वित नहीं होने देते। यदि न्यायपालिका या सभ्य समाज कोई सुधार प्रस्तुत करता है तो राजनीतिक दल अपने आपसी बैर किनारे कर एकजुट हो कर उसका विरोध करते हैं। (मिसाल के तौर पर जनलोकपाल विधेयक, राजनीतिक दलों को आरटीआई के अंर्तगत लाना, चुनावी ख़र्चों में कटौती, आपराधिक छवि के उम्मीदवारों का चुनाव लड़ने पर रोक इत्यादि)। पिछले चार दशकों में सात राष्ट्रीय समितियां/आयोग गठित किए गए जिन्होंने चुनाव सुधार संबंधी अनेक सुझाव दिए (गोस्वामी समिति 1990, वोहरा समिति 1993, न्यायिक आयोग 1999, संविधान में सुधार समीक्षा आयोग 2001, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, तथा निर्वाचन आयोग के सुझाव 2004 व 2012)। यह सुझाव कई दशकों से विचाराधीन व अनिर्णित है। इनके साथ ही पुलिस, प्रशासनिक व न्यायिक सुधार के सुझावों पर भी सरकार ने कोई कार्रवाई नहीं की। इनके कारण जनता का विश्वास राजनीतिक व्यवस्था से उठता जा रहा है।

भारत में चुनावी प्रक्रिया को 'लोकतंत्र का महोत्सव' कहा जाता है। भारत का निर्वाचन आयोग, केंद्रीय महालेखा परीक्षक, न्यायपालिका और सेना कुछ ऐसे संगठन है जिन्हें लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। 16वीं लोकसभा चुनाव के सुचारू संचालन के लिए निर्वाचन आयोग बधाई का पात्र है। किंतु लोग देश में 30-40 दिनों तक चलने वाली चुनाव प्रक्रिया पर सवाल उठाते हैं कि यह किस प्रकार का लोकतंत्र है जहां मतदान सुरक्षा बलों की छत्रछाया के बिना नहीं किया जा सकता। किंतु सत्य तो यह है कि चुनावी प्रक्रिया में यदि सुरक्षा व्यवस्था न हो तो बूथ कैप्चरिंग, मतदाताओं के साथ ज़ोर ज़बरदस्ती/हिंसा इत्यादि होने की पूरी संभावना है। क्या ऐसे चुनाव जहां आम आदमी को राजनीतिक दल रुपया, शराब, क़ीमती तोहफों से खरीदते हैं, स्वतंत्र और निष्पक्ष मतदान कहा जा सकता है? मीडिया के सूत्रों के तहत, लोकसभा चुनाव प्रचार के दौरान निर्वाचन आयोग ने 1,100 करोड़ रुपये की नकदी, शराब व नशीले पदार्थ आदि जब्त किये किंतु निर्वाचन आयोग द्वारा आधिकारिक आंकड़ा 299 करोड़ रुपये है। गौर करने का विषय है कि 1,100 करोड़ रुपये की राशि चुनाव संचालन के कुल ख़र्च की एक तिहाई लागत है!

लोकतांत्रिक देशों में विभिन्न प्रकार की चुनावी प्रणालियां अपनाई गई हैं। हम 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' प्रणाली का पालन करते हैं। इस प्रणाली में जिस किसी भी उम्मीदवार को अधिकतम संख्या में वोट प्राप्त होते हैं उसे विजेता घोषित किया जाता है। इस प्रणाली का लाभ यह है कि परिणाम जल्दी और निर्णायक तौर पर घोषित किये जाते हैं। किंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या यह मतदाताओं की राजनीतिक पसंद का सही मायने में प्रतिनिधित्व करता है? हाल ही में संपन्न 16वीं लोकसभा के चुनाव में 331 (यानी 61 प्रतिशत) सांसद 50 प्रतिशत से कम मतदान से जीते हैं। यदि हम असली प्रतिनिधिकता का ब्यौरा लें (प्रतिनिधिकता = एक सांसद को मिले वोटों की संख्या का विभाजन निर्वाचन क्षेत्र में पंजीकृत मतदाताओं की संख्या से किया जाए) तो औसत 31 प्रतिशत है। केवल 4 सांसद 50 प्रतिशत से अधिक से जीते हैं। यह दर्शाता है कि अधिकतर विजेता सांसद, सही मायने में मतदाताओं के बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं। इसके अलावा एक प्रतिशत मतदाताओं ने 'नोटा विकल्प' का प्रयोग किया। यह भी नेताओं के विरुद्ध मतदाताओं के असंतोष का संकेतक है। आम धारणा यह है कि राजनेता चुनाव के दौरान वोट मांगने के लिए सबका दरवाज़ा खटखटाते हैं किंतु निर्वाचित होने के पश्चात अपने निर्वाचन क्षेत्र और उन मतदाताओं के प्रति जिन्होंने उन्हें चुना है, उदासीनता प्रकट करते हैं।

पिछले चार दशकों में सात राष्ट्रीय समितियां/आयोग गठित किए गए जिन्होनें चुनाव सुधार संबंधी अनेक सुझाव दिए (गोस्वामी समिति 1990, वोहरा समिति 1993, न्यायिक आयोग 1999, संविधान में सुधार समीक्षा आयोग 2001, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, तथा निर्वाचन आयोग के सुझाव 2004 व 2012)। कई सुझाव कई दशकों से विचाराधीन व अनिर्णित हैं। इसके साथ ही पुलिस, प्रशासनिक व न्यायिक सुधार के सुझावों पर भी सरकार ने कोई कार्रवाई नहीं की।

चुनाव सुधार की आवश्यकता

हमारा विश्वास है कि शासन में सुधार लाने के लिए और देश को प्रगतिशील बनाने के लिए सही नेताओं का चुनाव अति आवश्यक है। हमारे अनुभव व विश्लेषण से देखा गया है कि सत्ता में रहने के उपरांत निर्वाचित प्रतिनिधियों की संपत्ति में कई गुना वृद्धि होती है। चुनाव अभियान के दौरान किए गए ख़र्च की वसूली, निर्वाचित प्रतिनिधि, अपने कार्यकाल के दौरान धन की एक बड़ी राशि एकत्रित करके करते हैं। इसलिए हमें ऐसा माहौल तैयार करने की आवश्यकता है जिससे सक्षम, ईमानदार, कानून के पाबंद नागरिक लोकसभा/विधानसभाओं में निर्वाचित हो सकें। लोकतांत्रिक प्रणाली में सुधार लाने के लिए राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव है इसलिए राजनीतिक दलों पर न्यायपालिका, नागरिक समाज संगठनों, केंद्रीय महालेखा परीक्षक और निर्वाचन आयोग जैसे संस्थानों का निरंतर दबाव अति आवश्यक है। सही नेताओं को चुनने के लिए मतदाताओं में जागरुकता अत्यंत महत्वपूर्ण है। मतदाताओं को यह समझना होगा कि जो नेता आज उनका मत खरीदता है वह कल उनके भविष्य से समझौता करेगा।

एडीआर के सुझाव

हम उन सिफ़ारिशों पर चर्चा करेंगे जिनसे चुनाव प्रणाली :

- अधिक से अधिक मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करे।
- निष्पक्ष और पारदर्शी हो।
- राजनीतिक दलों को पारदर्शी और जवाबदेह बनाए।
- शासन में स्थिरता लाए।
- हमारे लोकतंत्र को मज़बूत बनाए।

इसी क्रम में प्रमुख उपाय निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं:

आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों के चुनाव लड़ने पर रोक

मौजूदा कानून के तहत, वास्तव में केवल उन लोगों को चुनाव लड़ने से वंचित किया जाता है जिन्हें न्यायालय ने दोषी पाया है। इस कानून में संशोधन करने की आवश्यकता है

ताकि सुनिश्चित हो सके कि ऐसे व्यक्ति चुनाव न लड़ सके:

- जिनके ख़िलाफ़ आपराधिक आरोप न्यायपालिका द्वारा तय किए जा चुके हों।
- ऐसे उम्मीदवार जिनके प्रति आरोप-पत्र दाखिल है जिसमें 5 वर्ष या उससे अधिक के लिए कैद की सजा है।
- हत्या, बलात्कार, डकैती, अपहरण, तस्करी आदि जैसे जघन्य अपराध के दोषी व्यक्ति को स्थाई रूप से चुनाव लड़ने से वंचित किया जाना चाहिए।

इस सिलसिले में जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 की धारा 8 में उचित संशोधन पारित किया जाना आवश्यक है।

चुनावी ख़र्च पर रोक

चुनाव में अत्यधिक पैसे का उपयोग एक गंभीर समस्या है। उम्मीदवारों के चुनाव खर्च की निर्धारित सीमा का सख्ती से पालन नहीं होता है। चुनाव प्रक्रिया को शुद्ध करने के लिए राजनीतिक दलों के चुनाव ख़र्च की अधिकतम सीमा निर्धारित करना भी अत्यंत आवश्यक है। यदि बड़े व्यापारी, राजनीतिक दलों को चुनावी ख़र्चे के लिए खूब पैसा देंगे तो जायज़-सी बात है कि वे सत्ता में आने वाले राजनीतिक दल से अपने लाभ की अपेक्षा करेंगे। इसका आम जनता पर बुरा असर पड़ता है।

एडीआर ने 28 मई, 2014 को दिल्ली उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की है जिसमें राजनीतिक दलों के चुनाव ख़र्च पर सीमा निर्धारित करने की पेशकश की गई है। एक मांग यह भी की गई है कि चुनाव आरंभ होने से एक वर्ष पूर्व राजनीतिक दल अपने चुनावी ख़र्चे का ब्यौरा निर्वाचन आयोग को देना आरंभ करें और चुनाव के नज़दीक आने पर हर महीने/सप्ताह ब्योरा दें। इस पर भी जनप्रतिनिधि कानून 1951 की धारा 77 में उचित संशोधन करने की आवश्यकता है।

सतर्कता समितियां

अन्य लोकतांत्रिक देशों में सतर्कता समितियां गठित करने का प्रावधान है। सतर्कता/नागरिक समितियों के गठन की सिफ़ारिश लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने भी की थी। इसमें यह प्रावधान हो कि संसद का उम्मीदवार बनने के लिए एक व्यक्ति को न्यूनतम 25 हज़ार मतदाताओं का समर्थन प्राप्त होना चाहिए।

प्रतिनिधित्ववादी वैधता

राजनीतिक दलों की बहुलता तथा 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' प्रणाली के रहते अधिकतर सांसद और विधायक एक अल्पसंख्यक मतदान पर चुने जाते हैं। 16वीं लोकसभा चुनाव में 543 सांसद कुल मतदान के 47 प्रतिशत की औसत से जीते। 4 सांसद तो केवल 30 प्रतिशत से भी कम मत पाकर विजयी हुए। प्रातिनिधिकता का सिद्धांत तब सफल माना जाएगा जब एक उम्मीदवार कुल मतदान के 50 प्रतिशत से एक ज्यादा वोट प्राप्त करने में सफल रहे लेकिन यह आसान प्रस्ताव नहीं है इसलिए एक उम्मीदवार को विजेता घोषित करने के लिए कुल मतदान का कम से कम 40 प्रतिशत वोट प्राप्त करने का हमारा सुझाव है। यदि किसी भी उम्मीदवार को 40 प्रतिशत वोट नहीं मिलते हैं तो दो शीर्ष उम्मीदवारों के बीच एक 'रनऑफ' होना चाहिए।

16वीं लोकसभा चुनाव में 543 सांसद कुल मतदान के 47 प्रतिशत की औसत से जीते। 4 सांसद तो केवल 30 प्रतिशत से भी कम मत पाकर विजयी हुए। प्रातिनिधिकता का सिद्धांत तब सफल माना जाएगा जब एक उम्मीदवार कुल मतदान के 50 प्रतिशत से एक ज्यादा वोट प्राप्त करने में सफल रहे। यह आसान प्रस्ताव नहीं है इसलिए एक उम्मीदवार को विजेता घोषित करने के लिए कुल मतदान का कम से कम 40 प्रतिशत वोट प्राप्त करने का सुझाव दिया गया है।

राजनीतिक दलों के आंतरिक मामलों को विनियमित करने के लिए कानून

लोकतांत्रिक संस्थाओं की वैधता कायम करने के लिए कानूनी नींव आवश्यक है। भारत में राजनीतिक दलों को विनियमित करने के लिए कोई कानून नहीं है। पार्टी पदाधिकारियों और राजनीतिक दलों में आंतरिक पारदर्शिता अत्यंत आवश्यक है। चुनाव में लड़ने के लिए उम्मीदवारों का चयन पार्टी हाईकमान के हाथों में सिमटकर नहीं रह जाना चाहिए। एक अन्य मुद्दा, राजनीतिक दलों और चुनाव की फंडिग में पारदर्शिता और जवाबदेही है। इसलिए राजनीतिक दलों को विनियमित करने के लिए एक कानून की ज़रूरत है जोकि उनके संविधान, धन, खातों की लेखापरीक्षा, पदाधिकारियों के चुनाव व राजनीतिक दलों का पंजीकरण रद्द करने के विषय में नियम निर्धारित करे।

न्यायिक विलंब

भारत में बड़ी संख्या में ऐसे सांसद/विधायक हैं जिनके ख़िलाफ़ विभिन्न अदालतों में 10 से 20 वर्ष से लंबित आपराधिक मामले हैं। चुनाव परिणाम घोषित होने के 45 दिनों के भीतर किसी भी उम्मीदवार के चुनावी कदाचार के ख़िलाफ़ जनप्रतिनिधित्व कानून के अंर्तगत एक चुनाव याचिका दायर की जा सकती है। किंतु देखने में यह आया है कि हमारी न्याय वितरण प्रणाली में इतना विलंब है कि आरोपित सांसद या विधायक कोर्ट केस का फ़ैसला होने से पहले ही अपने 5 वर्ष के कार्यकाल पूरा कर लेते हैं, जबकि जनप्रतिनिधित्व कानून चुनाव याचिका की सुनवाई 6 महीने के अंदर समाप्त करने की सलाह देता है। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने भी यह आदेश दिया है कि वर्तमान सांसदों एंव विधायकों जिनके ख़िलाफ़ जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 8(1), 8(2) एंव 8(3) के अंर्तगत आरोप तय हो चुके हों उन मामलों की सुनवाई आरोप तय होने के एक वर्ष के अंदर होनी चाहिए परंतु यह देखने वाली बात है कि इस पर कितना अमल होता है।

राजनीतिक दलों का सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत आना

जून 2013 में, केंद्रीय सूचना आयोग की पूर्ण पीठ ने 6 राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को लोक प्राधिकरण घोषित किया तथा सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के तहत किसी नागरिक द्वारा याचिका पर सूचना देने का उन्हें निर्देश दिया। राजनीतिक दलों को केंद्रीय सूचना आयोग का यह आदेश उनके अपने हितों के प्रतिकूल लगा और सरकार ने इस आदेश को दरकिनार करने के लिए एक स्थाई समिति का गठन किया। किसी भी राष्ट्रीय राजनीतिक दल ने अभी तक कानून की अदालत में केंद्रीय सूचना आयोग के आदेश को चुनौती नहीं दी है और ना ही आरटीआई प्रश्नों का जवाब देने के लिए पीआईओ

(जन सूचना अधिकारी) नियुक्त किया है। मुद्दा अभी अधर में लटका है।

राजनीतिक दलों का प्रसार

भारत ही शायद एक ऐसा लोकतंत्र है जिसमें 1698 राजनीतिक दलों में से 16वीं लोकसभा में केवल 464 दलों ने चुनाव लड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन राजनीतिक दलों की बड़ी संख्या चुनाव लड़ने के लिए नहीं शायद अपनी आय पर आयकर की छूट का लाभ उठाने के लिए है। इसलिए हमारा सुझाव है कि निर्वाचन आयोग को 6 साल या उससे अधिक के लिए चुनाव न लड़ने पर राजनीतिक दलों का पंजीकरण रद्द करने का अधिकार होना चाहिए।

निष्कर्ष

पिछले कई वर्षों में लोकतांत्रिक मूल्यों का क्षरण, लोकतंत्र और समाज का नैतिक पतन, व जनता का लोकतांत्रिक संस्थानों के साथ मोहभंग और समाज की लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास कम हुआ है। संवैधानिक लोकतंत्र की कमी का सबसे प्रतिकूल प्रभाव हमारे चुनावी और राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ता है। भ्रष्ट चुनावी प्रथाओं, चुनाव की उच्च लागत, धन और बाहुबल का दुरुपयोग और प्रतिनिधित्ववादी वैधता की कमी हमारे लोकतंत्र को खोखला कर रही है। इसलिए लोगों की इच्छानुसार चुनावों को अधिक सार्थक बनाने के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए चुनाव सुधार अनिवार्य है। हमें एकजुट होकर पूरी दुनिया के 'सबसे बड़े लोकतंत्र' को दुनिया का 'सबसे अच्छा लोकतंत्र' बनाने के लिए संघर्ष करना है।

26 नवंबर, 1949 को डॉ राजेंद्र प्रसाद (अध्यक्ष, भारतीय संविधान सभा) ने, संविधान के पारित करने के लिए प्रस्ताव देने से पहले यह कहा था: ''यदि निर्वाचित लोग सक्षम, ईमानदार और अंखड चरित्र वाले हैं, तब वे दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वश्रेष्ठ बनाने में सक्षम हो जाएंगे। किंतु यदि उनमे इन गुणों की कमी है तब संविधान भी देश की सहायता नहीं कर सकता। आवश्यकता है ऐसे लोगों की जो दृढ़ चरित्र के हों, जो दिव्यदर्शी हों, और जो देश का हित छोटे समूहों व क्षेत्रों के लिए ना त्यागें... हम यह आशा ही कर सकते हैं कि देश से ऐसे नागरिक प्रचुर मात्र में निकल कर आएं।'' ❑

(लेखक चुनाव सुधारों से जुड़ी गैर-सरकारी संस्था एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के प्रमुख हैं। ई-मेल : anilverma@adrindia.org)

भूल सुधार

योजना के जून 2014 अंक में पृष्ठ संख्या 25 के बॉक्स में एवं पृष्ठ संख्या 26 के तीसरे अनुच्छेद में 'अनुच्छेद 52ए' को 'अनुच्छेद 53ए' पढ़ा जाए। इस त्रुटि से हुई असुविधा के लिए खेद है।

- व. संपादक

CSGS
COMPREHENSIVE SCHOOL OF GENERAL STUDIES
IAS
सिविल सेवा के लिए हिन्दी माध्यम का सबसे सफल संस्थान
सामान्य अध्ययन (प्री+मुख्य परीक्षा)
निःशुल्क
परिचर्चा
10 & 24 July
₹ 35000* Only (यह छूट प्रथम 60 छात्रों के लिए मान्य)
नये छात्रों को ध्यान में रखते हुए Special डिजाइन किये गए, पूर्णतः एकवर्षीय पाठ्यक्रम पर आधारित।
B-18, IInd Floor, Opposite Aggarwal Sweets, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9
email:csgsias@gmail.com, web:www.csgsias.com, www.facebook.com/csgsias
9818041656, 9311602617
YH - 90/2014

चुनाव सुधार : अतीत और भविष्य

जगदीप एस. छोकड़

चुनाव प्रक्रिया में वाकई सुधार की बहुत ज़रूरत है लेकिन ऐसा नहीं है कि अब तक कुछ किया नहीं गया हो। अतीत में कुछ प्रयास किये गए। कुछ ने सकारात्मक परिणाम दे उम्मीद जगायी तो कई ठीक से लागू नहीं किये जा सके। इन सबके बावजूद तस्वीर बहुत अच्छी नहीं दिख रही लेकिन संभावनाएं अनंत हैं। तमाम समितियों व आयोगों की सिफ़ारिशों के बीच कहीं-कहीं विरोधाभास भी है लेकिन कई मुद्दों पर उनके बीच समानता संभावनाओं के द्वार खोलती है। पूरी वस्तुस्थिति पर नज़र दौड़ाता आलेख

अपनी प्रशंसाओं को दरकिनार करते हुए, यह अनिवार्य हो गया है कि हम वर्तमान हालात का जायजा लें जो हमें चिंता में डालने वाले और विचार करने के लिए प्रेरित करने वाले हैं, क्योंकि जो ख़तरा व्याप्त है वह स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों की बुनियाद को आघात पहुंचाने वाला है।

चुनाव में धन और बाहुबल की भूमिका भलीभांति स्वीकार्य लोकतांत्रिक मूल्यों और लोकाचार पर गंभीर दुष्प्रभाव डाल रही है और प्रक्रिया को भ्रष्ट बना रही है; तेज़ी से हो रहा राजनीति का अपराधीकरण, बूथों पर कब्जे, धांधली, हिंसा आदि बुराइयों को बढ़ावा दे रहा है; सरकारी मशीनरी, अर्थात सरकारी मीडिया और मंत्रालयों के स्टॉफ का दुरुपयोग; अगंभीर उम्मीदवारों की भागीदारी का बढ़ता संकट; जैसी समस्याएं हमारी मतदान प्रक्रिया का हिस्सा बन चुकी हैं। इससे पहले की व्यवस्था स्वयं समाप्त हो जाए, तत्काल सुधारात्मक उपाय करना समय की सबसे बड़ी ज़रूरत है।

चुनाव सुधारों को एक सतत प्रक्रिया के रूप में समझना सही है। परंतु, अभी तक इस दिशा में किये गए प्रयास समस्या की बाहरी सतह को भी नहीं छू पाए हैं। लगता है वे विफल रहे हैं। मताधिकार के लिए आयु कम करना और दल-बदल विरोधी कानून जैसे हाल में किये गए कुछ उपाय निस्संदेह सराहनीय हैं और इन उपायों में अंतर्निहित बुनियादी सिद्धांतों को समझा जाना चाहिए लेकिन चुनाव से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य क्षेत्र हैं जिनकी पूरी तरह अनदेखी हुई है और उन्हें नि:सहाय छोड़ दिया गया है।

क्या ऊपर वर्णित चिंताएं समसामयिक हैं? यदि आप हां कहते हैं, तो आप सही भी हैं और गलत भी हैं। सही इसलिए क्योंकि आज भी स्थितियां जस की तस बनी हुई हैं और गलत इसलिए क्योंकि उपरोक्त वक्तव्य गोस्वामी समिति रिपोर्ट के रूप में मई 1990 में दिया गया था। समिति का आधिकारिक नाम चुनाव सुधार समिति था। इसमें कहा गया था, 'पिछले चार दशकों, विशेष रूप से 1967 के बाद, चुनाव सुधारों की मांग जोर-शोर से की जाती रही है।'

पिछले चार दशकों से 'चुनाव सुधारों की मांग' के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह ने 09 जनवरी, 1990 को सर्वदलीय बैठक बुलाई थी। बैठक के परिणामस्वरूप तत्कालीन विधि मंत्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई थी। समिति के सदस्यों में श्री लालकृष्ण आडवाणी, श्री सोमनाथ चटर्जी, श्री एरा सेझियन जैसे कुछ जाने-माने और अग्रिम पंक्ति के राजनीतिज्ञ और कुछ विशिष्ट नौकरशाह जैसे पूर्व राज्यपाल श्री एल.पी. सिंह और भूतपूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त एस.एल. शकधर शामिल थे। गोस्वामी समिति ने 107 सिफ़ारिशें कीं। मुझे इस बात की सही जानकारी नहीं है कि 107 सिफ़ारिशों में से कितनी लागू की गईं, और किस हद तक लागू की गई, लेकिन यह स्पष्ट है कि इन सिफ़ारिशों में से अधिसंख्य लागू नहीं की गई हैं या उन पर गंभीरता से सोचा भी नहीं गया है।

इस दिशा में एक और महत्वपूर्ण घटना 1993 में हुई, हालांकि उसका सीधा संबंध चुनाव सुधारों से नहीं था। इसे वोहरा समिति रिपोर्ट के रूप में प्रसिद्धि मिली। यह रिपोर्ट भारत सरकार के तत्कालीन गृह सचिव श्री एन.एन. वोहरा द्वारा तैयार की गई थी। समिति में वास्तव में सरकार के पांच वरिष्ठ अधिकारी

शामिल थे। परंतु रिपोर्ट को स्वयं श्री एन.एन. वोहरा ने तैयार किया था। समिति के गठन का लक्ष्य ऐसे 'अपराधी गिरोहों/माफिया संगठनों की गतिविधियों के बारे में उपलब्ध जानकारी की समीक्षा करना था जिनके संपर्क सरकारी अधिकारियों और नेताओं के साथ थे।'

जहां तक हमें मालूम है, इस रिपोर्ट को सार्वजनिक नहीं किया गया, लेकिन हमारे जैसे मुक्त समाज में यह रिपोर्ट इंटरनेट पर मुक्त रूप से उपलब्ध है और इसकी विषयवस्तु का खंडन नहीं किया गया है। चुनाव सुधारों के संदर्भ में इस रिपोर्ट का मुख्य योगदान यह है कि इसके फलस्वरूप 'राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण' जैसे मुहावरे सामने आए या कहें कि लोकप्रिय हुए। यह पहला अवसर था कि सुनियोजित और गैर-सुनियोजित अपराध का दुष्प्रभाव आधिकारिक रूप में चुनाव प्रक्रिया पर स्वीकार किया गया। हालांकि यह रिपोर्ट सार्वजनिक नहीं की गई।

चुनाव सुधारों की दिशा में अगला औपचारिक कदम 1998 में उठाया गया, जो इंद्रजीत गुप्त समिति रिपोर्ट के रूप में लोकप्रिय है। समिति का आधिकारिक नाम 'सरकार द्वारा चुनाव खर्च वहन किये जाने संबंधी समिति' था, जिसका गठन 1998 में किया गया था। इस समिति के सदस्यों में भी श्री इंद्रजीत गुप्त, श्री सोमनाथ चटर्जी, डॉ. मनमोहन सिंह, प्रोफेसर विजय कुमार मल्होत्रा और श्री दिग्विजय सिंह जैसे अनेक जाने-माने नेता शामिल थे।

चुनाव सुधारों की दिशा में अगला औपचारिक कदम 1998 में उठाया गया, जो इंद्रजीत गुप्त समिति रिपोर्ट के रूप में लोकप्रिय है। समिति का आधिकारिक नाम 'सरकार द्वारा चुनाव खर्च वहन किये जाने संबंधी समिति' था, जिसका गठन 1998 में किया गया था। इस समिति के सदस्यों में भी श्री इंद्रजीत गुप्त, श्री सोमनाथ चटर्जी, डॉ. मनमोहन सिंह, प्रोफेसर विजय कुमार मल्होत्रा और श्री दिग्विजय सिंह जैसे अनेक जाने-माने नेता शामिल थे।

चुनाव सुधारों के बारे में इंद्रजीत गुप्त समिति की रिपोर्ट का अक्सर हवाला दिया जाता है और चुनाव खर्च सरकार द्वारा वहन किये जाने के समर्थन में इस रिपोर्ट को सर्वाधिक उद्धृत किया जाता है। परंतु इस रिपोर्ट के 'निष्कर्ष' का प्रारंभिक अनुच्छेद उल्लेखनीय है जिसमें कहा गया है कि 'अंतिम निष्कर्ष निकालने से पहले, समिति अपना सोचा-समझा दृष्टिकोण प्रस्तुत किये बिना नहीं रह सकती क्योंकि इसकी सिफ़ारिशों का स्वरूप सीमित है और चुनाव सुधारों के विभिन्न पहलुओं में से केवल एक तक सीमित है। अत: ये सिफ़ारिशें चुनाव के क्षेत्र में केवल कुछ कॉस्मेटिक यानी सजावटी किस्म के परिवर्तन ला सकेंगी। परंतु आवश्यकता इस बात की है कि चुनाव प्रक्रिया को तत्काल नया रूप दिया जाए ताकि चुनाव सभी विनाशक घटकों के दुष्प्रभाव से मुक्त रहे, विशेषकर राजनीति के अपराधीकरण पर रोक लगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि धनबल और बाहुबल से मतदान की प्रक्रिया ख़राब होती है और इन दोनों घटकों का संयुक्त प्रभाव चुनावी मुक़ाबलों की पवित्रता को कलंकित करता है और स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों पर दुष्प्रभाव डालता है। चुनावी गतिविधियों के अन्य क्षेत्रों में भी सार्थक सुधारों की तत्काल आवश्यकता है।''

मेरी राय में अभी तक चुनाव सुधारों के बारे में जो दस्तावेज़ प्रस्तुत किए गए हैं उनमें सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज़ भारत के विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट है जो मई 1999 में तत्कालीन विधि मंत्री श्री राम जेठमलानी को सौंपी गई थी। 'चुनावी कानूनों में सुधार' नाम की यह रिपोर्ट भारत के उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी.पी. जीवन रेड्डी द्वारा तैयार की गई। इस बात को देखते हुए कि टुकड़ों-टुकड़ों में किये गये प्रयास लाभदायक नहीं रहे हैं, और मतदान प्रणाली की जटिलता को देखते हुए विधि आयोग से अनुरोध किया गया था कि वह देश में समूची मतदान प्रणाली का व्यापक अध्ययन करे और सुझाव दे कि समाज की ज़रूरतों के अनुरूप मतदान प्रक्रिया में किस तरह के सुधार आवश्यक हैं। आयोग ने ठीक इसके अनुरूप व्यापक दृष्टिकोण अपनाया और अपनी विस्तृत युक्तिसंगत एवं न्यायोचित सिफ़ारिशें देने से पहले समूची मतदान प्रणाली के सभी घटकों का अध्ययन किया। आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करने के रूप में अधिक कुछ नहीं किया गया है।

इसके बाद 23 फरवरी, 2000 को सरकार ने भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचेलैया की अध्यक्षता में संविधान की कार्यप्रणाली के अध्ययन के लिए राष्ट्रीय आयोग का गठन किया। इसके सदस्यों में भी उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति आर.एस. सरकारिया, लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष श्री पी.ए. संगमा, भारत के अटॉर्नी जनरल श्री सोली जे. सोराबजी, वरिष्ठ अधिवक्ता और भारत के पूर्व अटॉर्नी जनरल श्री के. पारासरण, द *स्टेट्समैन* के मुख्य संपादक और प्रबंध निदेशक श्री सी.आर. इरानी और अमरीका में भारत के पूर्व राजदूत डॉ. आबिद हुसैन जैसे अतिविशिष्ट व्यक्ति शामिल थे।

आयोग को एनसीआरडब्ल्यूसी के रूप में जाना गया और उसने 31 मार्च, 2002 को अपनी रिपोर्ट पेश की। रिपोर्ट में '*मतदान प्रक्रिया और राजनीतिक दल*' शीर्षक से एक पृथक अध्याय (अध्याय-4) दिया गया है। जिसमें 38 सिफ़ारिशें की गई हैं। यह दुखद है कि इन सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करने की दिशा में कुछ भी खास नहीं किया गया।

आयोग को एनसीआरडब्ल्यूसी के रूप में जाना गया और उसने 31 मार्च, 2002 को अपनी रिपोर्ट पेश की। रिपोर्ट में ''*मतदान प्रक्रिया और राजनीतिक दल*' शीर्षक से एक पृथक अध्याय (अध्याय-4) दिया गया है। जिसमें 38 सिफ़ारिशें की गई हैं। यह दुखद है कि इन सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करने की दिशा में कुछ भी खास नहीं किया गया।

भारत का निर्वाचन आयोग चुनाव प्रणाली में विभिन्न सुधारों के बारे में समय-समय पर भारत सरकार को अपनी सिफ़ारिशें करता रहा है, क्योंकि स्वयं सुधार करना निर्वाचन आयोग के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। इनमें कुछ सुधार ऐसे हैं जिनके लिए चुनाव संचालन नियम 1961, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और ऐसे ही अन्य नियमों एवं कानूनों में संशोधन की आवश्यकता पड़ेगी। सरकार समय-समय पर कुछ संशोधन करती रही है लेकिन बड़े संशोधनों की निरंतर अनदेखी हुई है। निर्वाचन आयोग ने ऐसी 22 सिफ़ारिशों का संकलन किया, जिनकी अनदेखी हुई है और तत्कालीन मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने 5 जुलाई, 2004 को प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा। जिसमें इन सिफ़ारिशों का ब्यौरा दिया गया था। आयोग ने 30 जुलाई, 2004 को इन सिफ़ारिशों को सार्वजनिक रूप में प्रकाशित किया। सरकार

की ओर से इन सिफ़ारिशों के बारे में कोई विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की गई।

इसके बाद 2008 में दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट सामने आई, जिसमें चुनाव प्रणाली के बारे में कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियां की गई थीं और चुनाव सुधारों के लिए कुछ गंभीर सिफ़ारिशें की गई थीं। दुर्भाग्य से सरकार ने इन सिफ़ारिशों को लागू करने की दिशा में कोई निर्णय नहीं लिया है।

अंततः 9 दिसंबर, 2010 को तत्कालीन विधि मंत्री एम. वीरप्पा मोइली और तत्कालीन मुख्य निर्वाचन आयुक्त एस.वाई. क़ुरैशी ने एक संयुक्त संवाददाता सम्मेलन में घोषणा की कि चुनाव सुधारों के बारे में राष्ट्रीय सहमति विकसित करने के लिए सात क्षेत्रीय और एक राष्ट्रीय परामर्श सत्र का आयोजन किया जाएगा, और उसके बाद चुनाव सुधारों के बारे में एक व्यापक नया कानून लाया जाएगा। वास्तव में, भारत के निर्वाचन आयोग के सहयोग से सात क्षेत्रीय विचार-विमर्श 2011 में पूरे किये गये। जबकि अंतिम सत्र 5 जून, 2011 को गुवाहाटी में संपन्न हुआ। इन क्षेत्रीय विचार-विमर्शों के बाद राष्ट्रीय स्तर पर विचार-विमर्श किया जाना था जिसके लिए कभी समय नहीं मिला। ऐसी खबरें भी थीं कि चुनाव सुधारों के बारे में एक विधेयक का मसौदा तैयार किया गया है और विधि मंत्री ने एक से अधिक अवसरों पर प्रधानमंत्री के साथ उस पर विचार-विमर्श किया है। इसके बाद विधि मंत्री को बदल दिया गया था और अब सरकार बदल गई है।

इस समूचे प्रकरण में अद्यतन कड़ी उस समय जुड़ी जब डॉ. क़ुरैशी ने 10 जून, 2012 को सेवानिवृत्त होने से पहले 13 अप्रैल, 2012 को इस मुद्दे पर प्रधानमंत्री को एक खत लिखा। डॉ. क़ुरैशी तत्कालीन विधि मंत्री वीरप्पा मोइली के साथ बार-बार होने वाले विचार-विमर्श में व्यापक तौर पर व्यक्तिगत रूप से शामिल रहे। श्री क़ुरैशी के पत्र के कुछ अंश आगे दिये गए हैं, जिनसे देश में चुनाव प्रणाली में सुधार लाने की कोशिश करने वालों की हताशा प्रकट होती है:

''मान्यवर कृपया मुझे अनुमति दें कि मैं आपके समक्ष यह तथ्य रख सकूं कि इस दिशा में अनिवार्य कानून को मूर्त रूप न दिये जाने से आयोग को गहरी निराशा हुई है।''

...''किंतु, हमारी चुनाव प्रक्रिया कुछ कमज़ोरियों के कारण हमारे चुनावों की गुणवत्ता पर अक्सर प्रश्नचिह्न लगते हैं। आयोग के सुधार प्रस्तावों का उद्देश्य हमेशा इस दुर्दशा को दूर करना रहा है। हालांकि सरकार और संसद द्वारा कुछ छिटपुट सुधार किये गए हैं लेकिन व्यापक सुधार वास्तव में अभी नहीं हुए हैं...''

''मैं आपका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि कुछ प्रस्ताव तकनीकी किस्म के हैं। जिनके लिए केवल विधि एवं न्याय मंत्रालय नियमों में संशोधन करने के लिए सक्षम है, और वे लंबे समय से लंबित हैं।''

निर्णय के बाद एक वर्ष से अधिक समय गुजर चुका है लेकिन राजनीतिक दलों ने फैसले को लागू नहीं किया है। आरटीआई एक्ट में संशोधन के प्रयास किये जा रहे हैं ताकि आदेश को निष्प्रभावी बनाया जा सके लेकिन इसमें भी अभी तक सफलता नहीं मिली है और गतिरोध जारी है।

ऊपर हमने 1968 के बाद से देश में चुनाव सुधारों के लिए किये गये प्रयासों के इतिहास में झांकने का प्रयास किया है। अब हम इस बात पर विचार कर सकते हैं कि हम कहां पहुंचे हैं, क्या हुआ है और क्या करने की आवश्यकता है, और क्या किया जा सकता है।

वर्तमान स्थिति

जहां तक चुनाव सुधारों का प्रश्न है वर्ष 2013 अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। वर्ष के दौरान अनेक घटनाएं हुई, जो सकारात्मक लगती हैं, और जो न्यायिक एवं अर्धन्यायिक संस्थानों से निकली है। इनकी शुरुआत 03 जून, 2013 को उस समय हुई जब केंद्रीय सूचना आयोग ने छह राष्ट्रीय पार्टियों को सूचना के अधिकार अधिनियम (आरटीआई) के अंतर्गत सार्वजनिक प्राधिकरण घोषित किया और उन्हें निर्देश दिया कि वे फ़ैसले के छह सप्ताह के भीतर जनसूचना अधिकारियों की नियुक्ति करें। निर्णय के बाद एक वर्ष से अधिक समय गुज़र चुका है लेकिन राजनीतिक दलों ने फ़ैसले को लागू नहीं किया है। आरटीआई एक्ट में संशोधन के प्रयास किये जा रहे हैं ताकि आदेश को निष्प्रभावी बनाया जा सके लेकिन इसमें भी अभी तक सफलता नहीं मिली है और गतिरोध जारी है।

अगली घटना उच्चतम न्यायालय का वह फैसला थी, जो माननीय अदालत ने लिली थॉमस और लोक प्रहरी मामले में दिया था। इसमें अदालत ने व्यवस्था दी थी कि किसी वर्तमान संसद सदस्य या विधायक को किसी आपराधिक मामले में यदि निचली अदालत द्वारा भी दो वर्ष या उससे अधिक की कारागार की सजा सुनाई जाती है तो उसकी सदस्यता तत्काल समाप्त हो जाएगी। भले ही उच्चतर अदालत में उसकी अपील लंबित क्यों न हो। अदालत ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा-8 (4) को असंवैधानिक घोषित करते हुए 10 जुलाई, 2013 को यह फ़ैसला सुनाया था। जनप्रतिनिधित्व कानून में संशोधन करने के लिए एक अध्यादेश जारी करते हुए अदालत के आदेश को निष्प्रभावी बनाने के प्रयास किये गए, लेकिन इन प्रयासों में सफलता नहीं मिली और अदालत का फ़ैसला अभी भी बरकरार है। परिणामस्वरूप तीन सांसदों को अपने पद से हटना पड़ा।

अगला महत्वपूर्ण फ़ैसला भी 13 सितंबर, 2013 को उच्चतम न्यायालय ने रिसर्जेन्ट इंडिया नाम के एक सिविल सोसाइटी संगठन की जनहित याचिका पर दिया। अदालत ने घोषणा की कि यदि कोई उम्मीदवार शपथ-पत्र में कोई ऐसा कॉलम खाली छोड़ता है, जो नामांकन

शपथ पत्र प्रस्तुत करने की शुरुआत 2002-03 में हुई थी। इसके लिए एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स ने दिल्ली उच्च न्यायालय और भारत के उच्चतम न्यायालय में अनेक जनहित याचिकाएं दायर की थीं। तत्सम्बन्धी अदालतों के फ़ैसले httpp://adrindia.org/ sites/ default/ files/supreme_courts_judgements_2nd_may_ 2002pdf और httpp://adrindia.org/sites/ default/filessupreme_courts_ judgements_ 13th._march_ 2003pdf पर देखे जा सकते हैं। यह एक अन्य मामला था। जिसमें कार्यपालिका और विधानपालिका में चुनाव सुधारों के लिए सिविल सोसायटी की उस पहल का विरोध करने की अपने-अपने तरीके से कोशिश की, जिसे न्यायपालिका ने उचित ठहराया था लेकिन अंततः न्यायपालिका की ही बात ऊपर रही।

पत्र में भरना अनिवार्य हो, तो चुनाव अधिकारी उसका नामांकन पत्र रद्द कर सकता है। इस नतीजे के परिणामस्वरूप 2014 के लोकसभा चुनाव में कुछ प्रमुख राजनीतिज्ञों को अपने शपथ-पत्रों में ऐसी जानकारी देनी पड़ी, जिसके लिए वे पिछले चुनावों में प्रस्तुत शपथ-पत्रों में कॉलम खाली छोड़ देते थे।

एक अन्य महत्वपूर्ण फ़ैसला 27 सितंबर, 2013 को उस समय सामने आया जब उच्चतम न्यायालय ने पीपुल्स यूनियन ऑफ सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) द्वारा दाखिल की गई एक जनहित याचिका (पीआईएल) का निपटारा करते हुए भारत के निर्वाचन आयोग को आदेश दिया कि वह इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों (ईवीएम) में उपरोक्त में से कोई नहीं (नोटा) का बटन लगाये ताकि जो मतदाता चुनाव लड़ रहे उम्मीदवारों में से किसी को भी वोट न देना चाहता हो, वह अपनी वोट की गोपनीयता बनाये रखते हुए अपने विकल्प का इस्तेमाल कर सके। अदालत ने अपने फ़ैसले को स्पष्ट करने के लिए निम्नांकित तर्क दिया:

''इस तरह का विकल्प प्रदान करने से मतदाताओं को राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किये गये उम्मीदवारों को पसंद न करने के अपने अधिकार का इस्तेमाल करने का अवसर मिल सकेगा। जब राजनीतिक दलों को यह पता चलेगा कि बड़ी संख्या में लोगों ने उनके उम्मीदवारों को नामंजूर कर लिया है, तो धीरे-धीरे व्यवस्था में बदलाव आएगा और राजनीतिक दल ऐसे उम्मीदवार खड़े करने के लिए मज़बूर होंगे जो लोगों को स्वीकार्य हों और अपनी ईमानदारी के लिए जाने जाते हों।'' (पैरा-55)

उच्चतम न्यायालय ने चुनाव प्रणाली में सुधार के अपने प्रयास वर्ष 2014 में भी जारी रखे हैं। 10 मार्च, 2014 को माननीय अदालत ने पब्लिक इंटरेस्ट फाउंडेशन द्वारा दाखिल की गई एक जनहित याचिका पर अपने फ़ैसले में सभी निचली अदालतों को आदेश दिया कि वे वर्तमान सांसदों और विधायकों के ख़िलाफ चल रहे आपराधिक मामलों में फ़ैसला एक वर्ष के भीतर सुनाये और संबद्ध उच्च न्यायालयों से भी कहा कि वे ऐसे मामलों की सुनवाई की प्रगति पर निगरानी रखें।

एक अन्य ऐतिहासिक फ़ैसला 05 मई, 2014 को आया जिसे अशोक चव्हाण पेड न्यूज मामले के रूप में जाना जाता है। 2009 के महाराष्ट्र राज्य विधानसभा चुनावों में नान्देड़ (महाराष्ट्र) के अंतर्गत भोखर विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र में अशोक चव्हाण से हारने वाले माधव राव किन्हल्कर ने निर्वाचन आयोग से शिकायत की थी कि अशोक चव्हाण ने अपने चुनाव ख़र्च की घोषणा में लोकमत अख़बार के पूरक पृष्ठों के लिए ख़र्च की गई राशि शामिल नहीं की है। आयोग ने शिकायत की जांच की और अशोक चव्हाण को कारण बताओ नोटिस जारी किया कि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा-10 ए के अंतर्गत उनका चुनाव क्यों न अवैध घोषित कर दिया जाए। चव्हाण ने उच्च न्यायालय में अपील की लेकिन उन्हें वहां सफलता नहीं मिली। उसके बाद उन्होंने उच्चतम न्यायालय में दावा किया कि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा-10 ए निर्वाचन आयोग को केवल चुनाव ख़र्च का ब्यौरा मांगने का अधिकार देती है और चुनाव खर्च के ब्यौरे की जांच का अधिकार प्रदान नहीं करती है। उच्चतम न्यायालय चव्हाण की इस दलील से सहमत नहीं था और उसने चुनाव खर्च के ब्यौरे की जांच करने के भारत के निर्वाचन आयोग के अधिकार को मान्यता प्रदान की और कहा कि यदि ब्यौरा गलत पाया जाता है तो आयोग निर्वाचित व्यक्ति को अयोग्य घोषित कर सकता है। इस मामले में निर्वाचन आयोग को अभी आगे कार्रवाई करनी है।

नयी लोकसभा का एक वर्ष 03 जून, 2015 को पूरा होगा। यदि 04 जून, 2015 को लोकसभा में कोई ऐसा वर्तमान सदस्य नहीं होगा जिसके ख़िलाफ़ आपराधिक मामला विचाराधीन हो तो समझा जायेगा कि प्रधानमंत्री ने चुनाव प्रचार में किया गया वादा पूरा किया है और देश को गौरव प्रदान किया है।

भावी योजना

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सिविल सोसायटी जो कुछ कर सकती है वह अपने तरह से प्रयास करती रही है। जब कुछ भी करना संभव नहीं लगता तो इस मामले में अक्सर न्यायिक मार्ग अपनाया गया है। इसके बावजूद कार्यपालिका और विधानपालिका, वास्तव में समूची राजनीति व्यवस्था चुनाव प्रणाली में किसी भी प्रकार के सुधारों के बारे में अड़ंगे लगाने के हर संभव प्रयास करती हैं। ऐसा नहीं है कि समूची राजनीतिक व्यवस्था पथभ्रष्ट हो। इस बात की अधिक संभावना है कि उनके मन में अज्ञात के प्रति भय की भावना है या फिर यथास्थिति बनाए रखना चाहते हैं, जो उन्हें परिवर्तन करने से रोकती है।

केंद्र में अब एक नयी राजनीतिक व्यवस्था सत्तारूढ़ हो चुकी है। अप्रैल-मई 2014 के दौरान लोकसभा चुनाव के लिए सशक्त प्रचार अभियान में यह देखने को मिला कि चुनाव सुधारों के बारे में अनेक बयान दिए गए। राजनीति की आपराधिकता के मुद्दे ने काफी ध्यान आकर्षित किया। वर्तमान प्रधानमंत्री ने प्रचार अभियान के दौरान एक से अधिक बार यह कहा कि वे उच्चतम न्यायालय से अनुरोध करेंगे कि वह सुनिश्चित करें कि लोकसभा के नवनिर्वाचित सदस्यों में से यदि किसी के भी ख़िलाफ़ आपराधिक मामले बकाया हो तो उनका फ़ैसला एक वर्ष के भीतर किया जाय। ताकि जो दोषी नहीं हैं उन्हें बरी और कलंक मुक्त किया जा सके लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जा सके कि जो दोषी हैं उनका दोष सिद्ध हो और उन्हें लोकसभा से हटा दिया जाये। इससे राष्ट्र को ऐसी लोकसभा दी जा सकेगी जिसके किसी सदस्य के ख़िलाफ़ कोई आपराधिक मामला बकाया न हो।

लोकसभा चुनाव के नतीजों से कोई आश्वस्त करने वाली ख़बरें नहीं मिली है। 2014 की लोकसभा में 186 सदस्य ऐसे हैं जिन्होंने अपने शपथ-पत्रों में घोषणा की है कि उनके ख़िलाफ़ आपराधिक मामले बकाया हैं। यह परेशान करने वाली बात है क्योंकि 2004 और 2009 की लोकसभाओं में ऐसे सदस्यों की संख्या क्रमश: 125 और 162 थी।

नयी लोकसभा का एक वर्ष 03 जून, 2015 को पूरा होगा। यदि 04 जून, 2015 को लोकसभा में कोई ऐसा वर्तमान सदस्य नहीं होगा जिसके ख़िलाफ़ आपराधिक मामला विचाराधीन हो तो समझा जायेगा कि प्रधानमंत्री ने चुनाव प्रचार में किया गया वादा पूरा किया है और देश को गौरव प्रदान किया है। ❑

(लेखक भारतीय प्रबंधन संस्थान, अहमदाबाद में प्रबंधन तथा संगठनात्मक व्यवहार के प्रोफेसर रह चुके हैं। वह गैर-सरकारी संस्था एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) के संस्थापक सदस्य भी हैं। उन्होंने चुनाव सुधारों पर व्यापक लेखन के साथ ही देश में लोकतंत्र तथा शासन में सुधार पर काफी कार्य किया है। ई-मेल : jchhokar@gmail.com)

GS MENTORS

सर्वोच्च *IAS* प्रशिक्षकों का संस्थान

भारत के सबसे सफल GS Mentors आपकी सफलता के लिए एक साथ

Zulfiquar Mohd.	Tarique Khan	K.R. Singh	एवं टीम
अर्थव्यवस्था	इतिहास एवं संस्कृति	राजव्यवस्था एवं शासन	

IAS 2015 फाउण्डेशन कोर्स

(G.S. & CSAT)

Separate English & Hindi Medium Batches

- सर्वोच्च विश्व विद्यालयों एवं IAS प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ा चुके अनुभवी प्रशिक्षक।
- अध्ययन सामग्री एवं साप्ताहिक टेस्ट का कक्षा कार्यक्रम के साथ समन्वय।

ENGLISH — STARTS 30 JUNE

8 महीने का विस्तृत कार्यक्रम

हिन्दी — प्रारम्भ 1 जुलाई

Weekend Batch — STARTS 19 JULY — Exclusively Designed for Working People

•• मॉड्यूल आधारित कोर्स उपलब्ध ••

Online Live Interactive Classes Starting Soon in

PUNE | HYDERABAD | BANGALORE | LUCKNOW | GURGAON

Address & Contact

532, Near Signature View Apartment Crossing, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009

For Enquiry : 011-27607070, 7840888777/666

Website : www.gsmentors.com | facebook.com/gsmentors | E-mail : info@gsmentors.com

YH - 98/2014

चुनाव-प्रणाली : विसंगतियां और सुधार

अभय कुमार दुबे

यह चुनाव प्रणाली का ही कमाल है कि हमें ऐसा परिणाम मिला है जिससे निकला जनादेश मतदाताओं के बहुलांश का सीधा प्रतिनिधित्व नहीं करता। एक तरह से यह बहु-जन के बजाय अल्प-जन का जनादेश है। वास्तव में केवल सोलहवीं लोकसभा ही नहीं बल्कि आज़ादी के बाद चुनी गयी प्रत्येक लोकसभा के जनादेश की कमोबेश यही स्थिति है। फ़र्क केवल यह है कि इस बार यह विसंगति अपने चरम पर पहुंच गयी है। तो क्या किया जाए? क्या इस प्रणाली को ख़ारिज करके हमें नयी प्रणाली अपना लेनी चाहिए

चुनाव सुधारों पर होने वाली चर्चाओं में आम तौर पर यह धारणा अंतर्निहित रहती है कि अगर कानूनों में परिवर्तन करके निर्वाचन-प्रक्रिया से धनबल, बाहुबल और अपराधी तत्वों को बाहर करते हुए राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र की स्थापना कर दी जाए तो हमारा लोकतंत्र कमोबेश आदर्श स्थिति में पहुंच सकता है। बुनियादी तौर पर गलत न होने के बावजूद यह तर्क अपर्याप्त है। निर्वाचन-प्रक्रिया की कामयाबी की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उसके जरिये प्रतिनिधित्व की वांछनीय संरचनाओं की गारंटी हो रही है या नहीं। इसलिए चुनाव-सुधारों पर कोई चर्चा शुरू करने से पहले यह तय करना ज़रूरी है कि क्या हम उस समग्र प्रणाली से कमोबेश संतुष्ट हैं जिसके तहत भरतीय लोकतंत्र आज़ादी के बाद से ही बार-बार निर्वाचन-प्रक्रिया से गुज़रता रहा है? क्या हमारी चुनाव-प्रणाली भारतीय समाज के सभी छोटे-बड़े और शक्तिशाली या दुर्बल समुदायों तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों को लोकतांत्रिक राज्य में समुचित प्रतिनिधत्व प्रदान कर पाने में सक्षम है? चूंकि लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व का बुनियादी उसूल समतामूलकता है इसलिए यह जानना भी आवश्यक है कि क्या यह प्रणाली सभी को बराबर नुमाइंदगी मुहैया करा पा रही है? यह प्रश्न सोलहवीं लोकसभा के लिए हुए चुनाव के नतीजों की रोशनी में और भी प्रासंगिक हो गया है।

फर्स्ट पास्ट द पोस्ट प्रणाली अथवा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली

दरअसल, हमारी प्रणालीगत उलझनों का एक जायज़ा इन तथ्यों से लगाया जा सकता है: दलित राजनीतिक हितों की नुमाइंदगी करने वाली बहुजन समाज पार्टी (बसपा) पूरे देश में 4.2 प्रतिशत वोट हासिल करने के बावजूद एक भी निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव नहीं जीत सकी। इसके विपरीत तृणमूल कांग्रेस को केवल 4.8, अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम (अन्नाद्रमुक) को 3.3 और बीजू जनता दल (बीजद) को केवल 1.7 फीसदी वोट मिले, लेकिन इन पार्टियों ने क्रमश: 34, 37 और 20 सीटें जीतने में कामयाबी हासिल कर ली। इस विसंगति की एक मोटी-मोटी सफाई इस आधार पर दी जा सकती है कि तृणमूल, अन्नाद्रमुक और बीजद का समर्थन आधार क्षेत्र-विशेष में केंद्रित है जबकि बसपा का आधार पूरे देश में बिखरा हुआ है। अगर यह दलील पूरे देश के मामले में ठीक है तो उत्तर प्रदेश के संदर्भ में ठीक क्यों नहीं है? जिस तरह तृणमूल, अन्नाद्रमुक और बीजद का आधार क्रमश: पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु और ओडिशा में केंद्रित है। उसी तरह बसपा का आधार उत्तर प्रदेश में केंद्रित माना जाता है जहां उसे बीस फीसदी वोट मिले लेकिन इतने वोटों के बावजूद वह अपना खाता नहीं खोल सकी। भारतीय जनता पार्टी को उत्तर प्रदेश में 42 प्रतिशत वोट मिले और उसने 71 सीटों पर कब्ज़ा कर लिया। तो फिर उसके मुक़ाबले आधे से कुछ कम ही वोट प्राप्त करने वाली बसपा शून्य पर क्यों रही? वस्तुत: हमारी चुनाव-प्रणाली ऐसी कई विसंगतियों की जन्मदाता है।

इस विसंगति का सामाजिक पहलू कितना संगीन है, यह देखना भी आवश्यक है। सीएसडीएस द्वारा किये गये चुनाव उपरांत सर्वेक्षण (पोस्ट पोल सर्वे) के आंकड़ों के आधार पर भाजपा को मिले जनादेश का एक अनुमानित किस्म का सामाजिक चरित्र निर्धारित किया जा सकता है। इस जनादेश का पचास

प्रतिशत से अधिक हिस्सा समाज में ऊंची जाति के समुदायों के मतों से मिल कर बनता हुआ दिखायी देता है। उत्तर भारत में तो इस बार समाज के इन मज़बूत समुदायों ने अभूतपूर्व रूप से अस्सी से नब्बे फ़ीसदी ध्रुवीकरण प्रदर्शित किया है। जनादेश का तकरीबन तीस फ़ीसदी हिस्सा पिछड़े समुदायों के वोटों से निर्मित हुआ लगता है। बाकी पंद्रह-सोलह फ़ीसदी जनादेश की रचना में दलित समुदायों का योगदान प्रतीत होता है और बचे हुए चार-पांच प्रतिशत में अल्पसंख्यक समुदाय और अन्य फुटकर वोट आते हैं। इसी जगह हमें इस विसंगति के राजनीतिक पक्ष पर भी ग़ौर करना होगा। भाजपा महज़ 31.1 फ़ीसदी और उसके नेतृत्व वाला राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठजोड़ (राजग) केवल 38.7 प्रतिशत वोटों के साथ 331 सीटें जीतने में कामयाब हो गया। जबकि बाकी बचे 61.8 प्रतिशत वोटों के बदले संसद में केवल 214 प्रतिनिधि ही पहुंच पाये। भारतीय जनता पार्टी गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गोवा, बिहार, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और दिल्ली में 256 सीटों पर लड़ी। इसमें इस पार्टी ने असाधारण रूप से 241 सीटें जीत ली। यानी राजनीतिक रूप से यह जनादेश मुक्ख्यत: उत्तर भारत, मध्य भारत और पश्चिम भारत के प्रभुत्व वाला जनादेश है। इसमें दक्षिणपूर्वी और उत्तर-पूर्वी भारत की उपस्थिति बहुत कम है। यह राजनीतिक एकतरफ़ापन भी चुनाव-प्रणाली संबंधी समस्याओं से निकला है।

भाजपा गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गोवा, बिहार, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और दिल्ली में 256 सीटों पर लड़ी और असाधारण रूप से 241 सीटें जीत ली। यानी यह जनादेश मुख्यत: उत्तर भारत, मध्य भारत और पश्चिम भारत के प्रभुत्व वाला जनादेश है। इसमें दक्षिण, पूर्वी और उत्तर-पूर्वी भारत की उपस्थिति बहुत कम है।

यह चुनाव प्रणाली का ही कमाल है कि हमें ऐसा परिणाम मिला है जिससे निकला जनादेश मतदाताओं के बहुलांश का सीधा प्रतिनिधित्व नहीं करता। एक तरह से यह बहु-जन के बजाय अल्प-जन का जनादेश है। वास्तव में केवल सोलहवीं लोकसभा ही नहीं बल्कि आज़ादी के बाद चुनी गयी प्रत्येक लोकसभा के जनादेश की कमोबेश यही स्थिति है। फ़र्क केवल यह है कि इस बार यह विसंगति अपने चरम पर पहुंच गयी है। तो क्या किया जाए? क्या इस प्रणाली को ख़ारिज करके हमें नयी प्रणाली अपना लेनी चाहिए? हम जानते हैं कि भारत में एफ़पीटीपी (फ़र्स्ट पास्ट द पोस्ट यानी जो आगे निकल गया वही जीता) प्रणाली चलती है। अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी से एक वोट ज़्यादा प्राप्त करने वाला उम्मीदवार सिकंदर होता है, पर महज़ एक वोट कम हासिल करने वाला पोरस भी नहीं हो पाता। उसे उपविजेता का खिताब भी नहीं मिलता। इस प्रणाली में केवल स्वर्ण पदक के लिए जगह है, रजत और कांस्य पदक के लिए नहीं। इसी वजह से इसके तहत प्राप्त नतीजे मुख्यत: वोटों के केंद्रीकरण और बिखराव की प्रक्रिया से बुरी तरह प्रभावित होते हैं। इसीलिए विपक्षी के वोट बिखरा देने और अपने वोट एकजुट करने का हर हथकंडा चुनाव लड़ने की कला का छिपा या खुला अंग बनता चला जाता है। यह अनिवार्यता राजनीतिक होड़ में अंतर्निहित नैतिकता की संरचना पर गहरा और काफ़ी हद तक नकारात्मक असर डालती है।

अगर हमें एफ़पीटीपी प्रणाली नहीं चाहिए, तो फिर हमें पीआर (प्रपोर्शनल रिप्रेजेंटेशन यानी आनुपातिक प्रतिनिधित्व) प्रणाली अपनानी होगी। एफ़पीटीपी प्रणाली की सीमाओं से तो हम वाक़िफ हो ही चुके हैं। क्या पीआर प्रणाली भारत जैसे देश में हमें सामाजिक - राजनीतिक नुमाइंदगी की बेहतर संरचना प्रदान कर सकती है? चुनाव के संदर्भ में भारतीय परिस्थिति का आकलन करते समय हम अपनी क्षेत्रीय, भाषागत और सांस्कृतिक विविधता नज़रअंदाज नहीं कर सकते क्योंकि इसी के तत्वावधान में हमारी दलीय प्रणाली का जन्म और विकास हुआ है। इसी विशिष्टता के कारण भारतीय लोकतंत्र की संघात्मकता अपने आप में एक विलक्षण तथ्य बन कर उभरी है। हम ऐसी कोई चुनाव-प्रणाली नहीं अपना सकते, जो भारतीय संघात्मकता को प्रत्यक्षत: और परोक्षत: संबोधित न करती हो। ऊपर हम देख चुके हैं कि एफपीटीपी प्रणाली चुनाव आयोग द्वारा प्रदत्त राष्ट्रीय पार्टी की मान्यता वाले बड़े-बड़े दलों के मुक़ाबले एक छोटे से क्षेत्र में सिमटी पार्टियों को अपने पक्ष में वोटों का ध्रुवीकरण करने की गुंजाइश प्रदान करती है। अगर ऐसा न होता तो भारतीय जनता पार्टी को ओडिशा, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल में भी कमोबेश वैसी ही कामयाबी मिलती जैसी उसने उत्तर भारत में प्राप्त की। अपनी सीमाओं के बावजूद यह एफपीटीपी प्रणाली की सकारात्मक खूबी है। एफपीटीपी प्रणाली की दूसरी सकारात्मक खूबी यह है कि वह द्वि-दलीय ध्रुवीकरण के अभाव वाली भारतीय दलीय प्रणाली के बावजूद कमोबेश स्थिर सरकार की संभावनाएं पेश करती है। एक पार्टी के बहुमत की स्थिति में भी और गठजोड़ सरकार के हालात में भी। सवाल यह है कि क्या पीआर प्रणाली इन खूबियों को कायम रखते हुए एफपीटीपी प्रणाली की नकारात्मकताओं की भरपाई कर सकती है?

मुश्किल यह है कि पीआर प्रणाली का अनुभव हमें इस प्रश्न का उत्तर असंदिग्ध हां में नहीं देता। पीआर प्रणाली बड़े राष्ट्रीय दलों के मुक़ाबले भारतीय संघ की अपेक्षाकृत कमज़ोर या अल्प-जन राजनीतिक ताक़तों के लिए नुक़सानदेह साबित हो सकती है। सांस्कृतिक विशिष्टताओं वाली क्षेत्रीय पार्टियां 'मेनलैंड' की बहुसंख्यक शक्ति के मुक़ाबले प्रतिनिधित्व की होड़ में और भी ज़्यादा पिछड़ सकती हैं। दूसरे, द्वि-दलीय होड़ के बजाय बहुदलीय होड़ की परिस्थिति में पीआर प्रणाली लगातार राजनीतिक अस्थिरता का ऐसा अंदेशा पेश करती है जो लोकतंत्र के विकास पर बहुत बुरा असर डाल सकता है। पीआर प्रणाली भारत में एक ऐसी स्थिति पेश कर सकती है जिसके तहत बहुमत की सरकार बनना ही अपने आप में एक समस्या हो जाएगी। कुछ प्रेक्षकों का विचार है कि यह अपने आप में कोई बुरी बात नहीं है क्योंकि एक पार्टी के बहुमत वाले वर्चस्व से अक्सर केंद्रीकरण की ताक़तें संघात्मकता की क़ीमत पर पनपती हैं

पीआर प्रणाली में चुनाव-उपरांत गठजोड़ों की नौबत ज़्यादा आ सकती है और पार्टी के ऊपर नेता का प्रभुत्व और अधिक कायम हो सकता है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रधानमंत्री की प्रमुखता वाले तंत्र पर राष्ट्रपति-प्रणाली का चरित्र आरोपित कर सकता है। इससे राजनीतिक प्रणाली में जनमत संग्रही प्रवृत्तियां जड़ जमा सकती हैं।

लेकिन इस तरह की परिस्थिति के कुछ अन्य फलितार्थ भी हो सकते हैं। मसलन, पीआर प्रणाली में चुनाव उपरांत गठजोड़ों की नौबत ज्यादा आ सकती है, और पार्टी के ऊपर नेता का प्रभुत्व और अधिक कायम हो सकता है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रधानमंत्री की प्रमुखता वाले तंत्र पर राष्ट्रपति-प्रणाली का चरित्र आरोपित कर सकता है। इससे राजनीतिक प्रणाली में जनमतसंग्रही प्रवृत्तियां जड़ जमा सकती हैं। प्रणाली बदलने से हो सकने वाले लाभों की तुलना में इन अंदेशों से बचना अधिक ज़रूरी लगता है। कहना न होगा कि एफपीटीपी प्रणाली में भी जनमतसंग्रही प्रवृत्तियां होती हैं और वह भी करिश्माई नेताओं को प्रोत्साहित करती है लेकिन संरचनागत अंतर होने के कारण संभवत: यह प्रणाली हमारी संघात्मकता के अधिक अनुकूल है और इसके ज़रिये राजनीतिक स्थिरता प्राप्त करने की संभावना कहीं ज्यादा है। इसलिए प्रतिनिधित्व की समतामूलक संरचनाएं गारंटी से न उपलब्ध करा पाने की सूरत में भी एफपीटीपी प्रणाली पीआर प्रणाली के मुक़ाबले भारत के लिए अधिक श्रेयस्कर लगती है।

चुनाव-सुधारों की ओर

ज़ाहिर है कि एफपीटीपी प्रणाली की अनिवार्य विकृतियों को नज़रअंदाज करते हुए ही भारतीय संदर्भ में उसके भीतर सुधार करने की कोशिशें की जा सकती हैं। इस ज़रूरत की ओर सबसे पहले सत्तर के दशक में जयप्रकाश नारायण का ध्यान गया था। उन्होंने न्यायमूर्ति वी.एम. तारकुंडे की अगुआई में एक समिति गठित की जिसकी रपट 1975 में सामने आई। इसके बाद से कई समितियों, आयोगों और अध्ययनों का सिलसिला शुरू हो गया जिनके कारण चुनाव-सुधारों का प्रश्न पिछले पैंतीस साल से ही वाद-विवाद के एजेंडे पर बना हुआ है। वर्ष 1990 में दिनेश गोस्वामी कमेटी गठित की गयी। 1998 में इंद्रजीत गुप्ता कमेटी ने मुख्य रूप से चुनाव में खर्च होने वाले धन की समस्या पर विचार किया। फिर 1999 में विधि आयोग ने 170 पृष्ठ की रपट जारी की जिसमें व्यापक चुनाव सुधारों की सिफ़ारिशें की गई थीं। निर्वाचन आयोग भी अस्सी के दशक से ही चुनाव सुधारों के लिए तरह-तरह की पहलकदमियां लेता रहा है। सर्वोच्च न्यायालय के कई फ़ैसलों ने भी कई पहलुओं से चुनाव-प्रक्रिया को सुधारा है। विरोधाभास यह है कि इन प्रयासों के बावजूद चुनाव-प्रक्रिया से धनबल, बाहुबल और अपराधीकरण को बहिष्कृत नहीं किया जा सका है। इसका सबसे बड़ा कारण है राजनीतिक दलों की हिचक जिसके चलते भारतीय लोकतंत्र निर्वाचन की आदर्श संरचनाओं से दूर बना हुआ है। चुनाव सुधारों की ज़रूरत से कोई पार्टी इनकार नहीं करती, लेकिन विडम्बना यह है कि छिटपुट परिवर्तनों को छोड़ कर शायद ही किसी पार्टी ने रैडिकल और विस्तृत सुधारों को अपनी प्राथमिकता बनाया हो। और तो और, उन्होंने बीच-बीच में ऐसे कदम भी उठाये हैं जिनसे सुधारों की प्रक्रिया को धक्का तक लगा है।

चुनाव-प्रक्रिया से धनबल, बाहुबल और अपराधीकरण को बहिष्कृत नहीं किया जा सका है। इसका सबसे बड़ा कारण है राजनीतिक दलों की हिचक जिसके चलते भारतीय लोकतंत्र निर्वाचन की आदर्श संरचनाओं से दूर बना हुआ है। चुनाव सुधारों की ज़रूरत से कोई पार्टी इनकार नहीं करती, लेकिन विडंबना यह है कि छिटपुट परिवर्तनों को छोड़ कर शायद ही किसी पार्टी ने रैडिकल और विस्तृत सुधारों को अपनी प्राथमिकता बनाया हो।

जन-प्रतिनिधित्व कानून की धारा 77 की उपधारा (1) का ताल्लुक चुनाव में होने वाले खर्चे से है। मूलत: इसका मतलब था उम्मीदवार के दोस्तों और रिश्तेदारों या उसके एजेंटों द्वारा किये जाने वाले व्यय को भी खर्च सीमा के तहत लाना। खर्च सीमा के उल्लंघन का अर्थ था चुनाव लड़ने पर छह साल की पाबंदी। 1975 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस संबंध में उठे विवाद पर विचार करके फ़ैसला दिया था कि दोस्तों, एजेंटों और राजनीतिक दलों द्वारा किया जाने वाला खर्च भी उम्मीदवार द्वारा किया जाने वाले व्यय में शुमार किया जाना चाहिए। अगर सर्वोच्च न्यायालय की बात मान ली जाती तो चुनाव को धनबल के ज़रिये प्रभावित करने पर काफ़ी हद तक रोक लग सकती थी लेकिन, फ़ैसला आने के फ़ौरन बाद एक अध्यादेश जारी करके उपधारा (1) में एक व्याख्या जोड़ कर इसे निष्प्रभावी कर दिया गया। बाद में यह अध्यादेश संसद द्वारा जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन की तरह पारित हो गया। इसके बाद सर्वोच्च न्यायालय कई बार अपने प्रेक्षणों में संसद से अपील कर चुका है कि वह इस मसले पर इस प्रकार का विधिनिर्माण करे जिससे चुनाव में धनबल के कारण विकृतियां न आए, लेकिन अभी तक हमारे विधिनिर्माताओं के कान पर जूँ भी नहीं रेंगी है। विधि आयोग इंद्रजीत गुप्ता कमेटी द्वारा की गयी वह सिफ़ारिश मान चुका है जिसमें प्रयोगात्मक रूप से चुनावों की आंशिक सरकारी फंडिंग का सुझाव दिया गया था लेकिन अभी तक यह केवल सुझाव की शक्ल में ही है।

चुनाव-सुधारों के लिए प्रयासरत संगठनों और प्रोफेसर जगदीप छोकड़ जैसे विश्लेषकों का विचार रहा है कि अगर मतदाताओं के लिये उम्मीदवारों के अतीत और वर्तमान के बारे में सभी सूचनाएं उपलब्ध हों तो वे अपने चयन को सुनिश्चित चयन में विकसित कर सकते हैं। इसी राय के आधार पर यह आशा की गयी थी कि चुनाव आयोग के सामने पेश किये गये उम्मीदवारों के हलफ़नामों से मतदाताओं को उम्मीदवारों की आपराधिक प्रवृत्तियों की जानकारी मिल जायेगी और वे ऐसे तत्त्वों को जन-प्रतिनिधित्व का आवरण ओढ़ने से रोक पाएंगे। यह भी उम्मीद की गयी थी कि जिन उम्मीदवारों की आमदनी अस्वाभाविक रूप से बढ़ रही है, वे भी जन-निगरानी के चलते मतदाताओं द्वारा उपेक्षित किये जाएंगे लेकिन, अभी तक ऐसी कोई उम्मीद पूरी नहीं हो पायी है। कोई भी उम्मीदवार इसलिए चुनाव हारता नहीं दिखा है कि उसका आपराधिक अतीत रहा है या उसके ऊपर स्रोत से अधिक आय का संदेह है। सर्वोच्च न्यायालय ने जब भी इस दिशा में कोई फ़ैसला दे कर चुनाव-सुधारों को प्रेरित करने की कोशिश की है, राजनेताओं और राजनीतिक दलों द्वारा हाय-तौबा मचा कर उन प्रयासों को वहीं का वहीं रोक दिया गया है।

मतदान पर जातिगत और समुदायगत प्रभावों का मुक़ाबला करने के लिए पूर्व-उपराष्ट्रपति कृष्णकांत ने एक सुझाव दिया था। इसके अनुसार क़ानून में परिवर्तन करके केवल उसी उम्मीदवार को विजयी घोषित करने का प्रावधान किया जाना चाहिए जिसे पचास प्रतिशत से अधिक मत मिले हों। अगर किसी

भी उम्मीदवार को इतने मत नहीं मिले हैं तो चुनाव निरस्त करके सबसे ज़्यादा मत पाने वाले दो उम्मीदवारों के बीच दूसरा चुनाव कराना चाहिए। कृष्णकांत की राय थी कि इस प्रक्रिया से पचास फीसदी मत प्राप्त करने के लिए उम्मीदवारों को अपने जातिगत समुदाय से ऊपर उठने का प्रयास करना ही होगा। उनका एक और सुझाव था कि मतपत्रों में 'कोई भी उपयुक्त नहीं' का खाना जोड़ा जाना चाहिए और अगर सभी उम्मीदवारों को खारिज करने के लिए ज्यादा वोट पड़ें तो फिर नये उम्मीदवारों के साथ फिर से चुनाव होना चाहिए। इसी तरह न्यायमूर्ती वी.आर. कृष्णा अय्यर ने सुझाव दिया था कि अगर किसी निर्वाचन क्षेत्र के कुल वोटों में से 35 फ़ीसदी वोट ही पड़ें तो फिर वहां चुनाव दोबारा होना चाहिए। आज स्थिति यह है कि कृष्णकांत का सुझाव 'नोटा' की शक्ल में लागू हो चुका है लेकिन वह एक नख-दंत विहीन नोटा है। नोटा का विकल्प चुनने वाले अगर बहुमत में हैं तो भी इसमें चुनाव ख़ारिज करने का प्रावधान नहीं किया गया है।

स्पष्ट है कि चुनाव-सुधारों का रास्ता बहुत लंबा है और उस पर केवल वही चल सकता है जिसमें पर्याप्त राजनीतिक इच्छा-शक्ति हो। अभी तक भारत की किसी भी सरकार ने और किसी भी नेता ने यह बीड़ा नहीं उठाया है। यही कारण है कि एक बेहतरीन चुनाव आयोग होते हुए भी भारतीय निर्वाचन प्रणाली अपने लोकतांत्रिक आदर्श से बहुत पीछे है। यही कारण है कि हाल ही में संपन्न हुए चुनाव में आयोग तक की ईमानदारी और निष्पक्षता पर पार्टियों और राजनेताओं द्वारा तरह-तरह के आक्षेप लगाने की नौबत आ गयी है। विस्तृत और गहन चुनाव-सुधार वक्त की मांग हैं। चुनाव में होने वाला भ्रष्टाचार सार्वजनिक जीवन और प्रशासन में होने वाले भ्रष्टाचार का जन्मदाता है। चुनाव-सुधारों का दायित्व पूरा किये बिना भ्रष्टाचार को प्रभावी रूप से नियंत्रित करने वाले लोकतंत्र और समाज की कल्पना करना नादानी होगी। चुनाव-सुधारों की फ़ाइल मोटी होती जा रही है और गेंद पूरी तरह नयी सरकार और नये नीति-निर्माताओं के पाले में है। ❑

(लेखक भारतीय भाषा कार्यक्रम, विकासशील अध्ययन पीठ (सीएसडीएस), दिल्ली के निदेशक हैं। ई-मेल : abhaydubey@csds.in)

संदर्भ :

1. पी.पी. राव (2104), 'इंडिया एलिंग इलेक्टोरल सिस्टम : नीट फ़ॉर रिफ़ॉर्म्स', विवेकानंद इंटरनेशनल फाउंडेशन, एचटीटीपी: वीआईएफ़आईइंडिया.ओआरजी (11 जून, 2014 को देखा गया).
2. *रिफ़ॉर्म्स ऑफ द इलेक्टोरल लॉज* (1999), लॉ कमीशन ऑफ़ इंडिया की 170वीं रपट, नयी दिल्ली.
3. *इलेक्टोरल रिफ़ॉर्म्स: व्यूज़ एंड प्रपोज़ल्स* (1998), इलेक्शन कमीशन ऑफ़ इंडिया, नयी दिल्ली.
4. जगदीप एस. छोकड़ (2001), 'इलेक्टोरल रिफ़ॉर्म्स : नीड फॉर सिटीज़ंस इनवॉल्वमेंट', *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* खंड 36, अंक 12, पृष्ठ 3977-3980.
5. संजय कुमार (2002), 'रिफ़ॉमग इंडियन इलेक्टोरल प्रोसेस', *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* खंड 37, अंक 34, पृष्ठ 3489-3491.

VAID'S Since 1985 The IAS Lifeline

SUCCESS HAS ONLY ONE ADDRESS

A.N. VAID'S ICS, DELHI

25/10, Basement, Old Rajender Nagar, Delhi

ANTHRO

मानवशास्त्र

The only Optional with Best Results Consistently

(to confirm pl visit www.upsc.gov.in)

& the Most Popular Expert

(since 1981)

VAID SIR

Batches Starting Shortly

Pl Contact Personally

(Hindi Medium Classes in Dr Mukherjee Nagar)

Postal Course Also Available

Test Series Starting Sept 6

For Details Contact Personally

Ph : 09311337737, 09999946748

LUCKNOW CHAPTER: B-36, Sector C, Aliganj

{For IAS, PCS & PCS(J)} For G. S., C-SAT, Anthro, Botany, History,Geography, Law, Pub. Admn. & Zoology

Ph: 0522-2326249, 0-9415011893

YH - 82/2014

ACCESS PUBLISHING INDIA PVT. LTD.

www.accesspublishing.in

Books for the Civil Services Examination 2014-15

Price: ₹ 1265/-

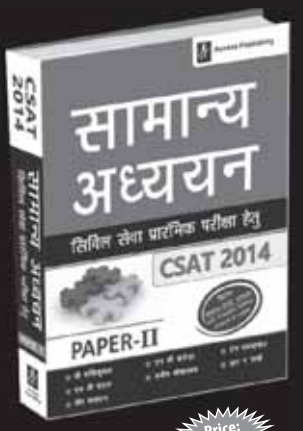

Price: ₹ 1150/-

प्रैक्टिस पेपर्स

Price: ₹ 375/-

Forthcoming

Prelims Special Series for 2014-15

New

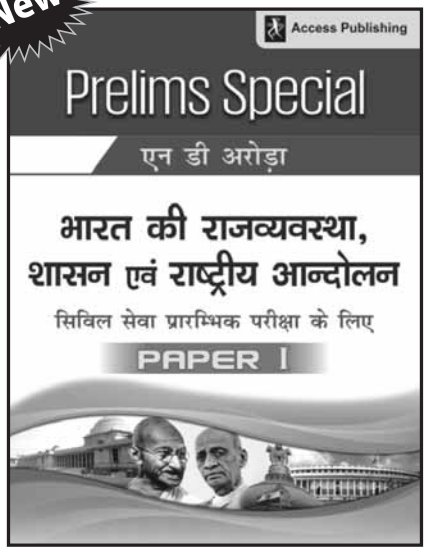

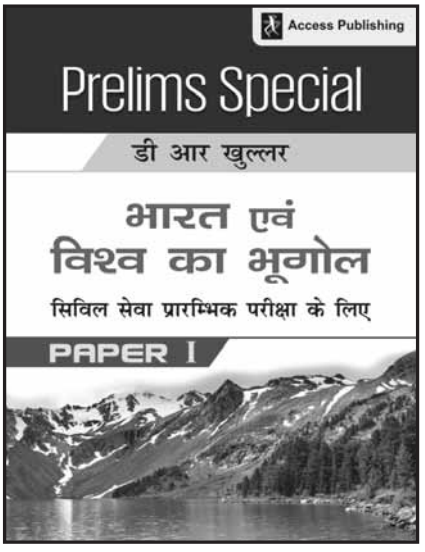

Price ₹ 295/- *for each Book*

Address: **14/6, Ground Floor (Backside), Shakti Nagar, Delhi - 110 007**
Email: info@accesspublishing.in, Ph.: 011-23843715, Mob.: 9810312114

YH - 84/2014

चुनाव, चुनाव सुधार और मज़बूत होता लोकतंत्र

सुब्रत के. मित्रा

1993 में पारित 73वां संशोधन संघीय ढांचे में तीसरे स्तर पर संवैधानिक परिवर्तन की शुरुआत थी जिसके तहत पहली बार स्थानीय स्तर पर एक तिहाई सीट महिलाओं द्वारा भरने का लक्ष्य निर्धारित कर सीधा लोकतंत्र बहाल किया गया और महिला सशक्तीकरण की दिशा में कदम उठाया गया। चुनावी प्रक्रिया को और अधिक बेहतर करने के बारे में समझ, चुनाव अधिनियम में सुधार पर संयुक्त संसदीय समिति (1971-72), 1975 की तारकुंडे समिति की रिपोर्ट, 1990 की गोस्वामी समिति की रिपोर्ट और 1998 में निर्वाचन आयोग द्वारा की गई संस्तुति जैसे कई सांस्थानिक कदमों को उठाकर विकसित किया गया है

पूरी दुनिया के लोकतंत्र समर्थकों के पास भारत के 16वें लोकसभा चुनाव के महत्व को मनाने के अच्छे कारण हैं। सार्वभौमिक मताधिकार लागू होने के बाद से पहली बार देश भर के 66.4 प्रतिशत मतदाताओं की भागीदारी ने भारत को विश्व के सर्वाधिक मतदान वालें देशों की सूची (तालिका : 1 देखें) में शामिल करा दिया है। लंबे और व्यापक चुनाव अभियान के बावजूद आमतौर पर शांतिपूर्ण, नियमपूर्वक, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव भारत की आंतरिक शक्ति और लचीले लोकतंत्र की तस्दीक करती है। यह आलेख चुनावी प्रक्रिया और भारत में मजबूत होते लोकतंत्र का एक झरोखा पेश करता है और कुछ ऐसे चुनावी सुधार की जरूरत पर बल देता है जो लोकतंत्र को मज़बूत करने के लिए आवश्यक है।

चुनाव और भारत में मजबूत होता लोकतंत्र

आज़ादी के बाद पहली बार देश में ''फर्स्ट पास्ट द पोस्ट'' प्रणाली के साथ सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार 1952 के आम चुनाव में पेश किया गया। वामपंथियों और दक्षिणपंथी जनसंघ सहित सभी राजनीतिक दलों को चुनाव

तालिका : 1

चुनाव आंकड़े, भारत के संसदीय चुनाव 1952-2014

वर्ष	निर्वाचन क्षेत्र	उम्मीदवार	मतदान केंद्र केंद्र	मतदाता (प्रति दस लाख में)	मतदान हुए (दस लाख में)	मतदान प्रतिशत
1952	489	1874	132,560	173.2	79.1	45.7
1957	494	1519	220,478	193.7	92.4	47.7
1962	494	1985	238,355	217.7	120.6	55.4
1967	520	2369	267,555	250.6	153.6	61.3
1971	518	2784	342,944	274.1	151.6	55.3
1977	542	2439	373,908	321.2	194.3	60.5
1980	529	4629	434,742	363.9	202.7	56.9
1984	542	5493	479,214	400.1	256.5	64.1
1989	529	6160	579,810	498.9	309.1	62.0
1991	534	8780	588,714	511.5	285.9	55.9
1996	543	13952	767,462	592.6	343.3	57.9
1998	539	4708	765,473	602.3	373.7	62.0
1999	543	4648	774,651	619.5	371.7	60.0
2004	543	5435	687,402	671.5	389.9	58.1
2009	543	–	828,804	716.0	–	56.9
2014	543	–	930,000	814.0	–	66.4

स्रोत: डाटा यूनिट, सीएसडीएस, दिल्ली तथा भारत निर्वाचन आयोग (1999, 2004, 2009, 2014)

में हिस्सा लेने की अनुमति दी गई। मताधिकार को व्यापक करने का ही परिणाम यह हुआ कि पूर्व में बिना किसी मतदान प्रक्रिया के अनुभव के निर्वाचक मंडल का न केवल शीघ्रता से पूरे देश में विस्तार हुआ बल्कि मतदान केंद्र तक मतदाताओं की उपस्थिति भी सुनिश्चित हुई। नए मतदाताओं को अचानक से इस प्रकार मतदान प्रक्रिया में शामिल किया जाना संसदीय लोकतंत्र और राजनीतिक व्यवस्था के लिए किसी आकस्मिक दुर्घटना का कारण बन सकती थी। विशेषकर हिंसा में तब्दील होने पर यह भारत के विभाजन जैसी विकट परिस्थिति उत्पन्न कर सकती थी लेकिन आज़ाद भारत में संसदीय लोकतंत्र को अपनाने के बाद के समय में राज्यों में स्थित संस्थानों की सक्रियता और नेताओं तथा उनके निर्वाचन क्षेत्र के बीच आपसी संबंधों और संवाद की निरंतरता ने राजनीतिक दलों और चुनावों को राजनीतिक संस्कृति का अविभाज्य अंग बना दिया। सभी सामाजिक वर्गों से चुनावों में मतदाताओं की भागीदारी लगातार बढती जा रही है। (तालिका : 1)

तालिका : 1 के सांख्यिकीय सूचक वृहद स्तर पर चुनावी प्रक्रिया आयोजित करने में भारत की सफलता का उदाहरण हैं। बड़े पैमाने पर गरीबी और अशिक्षा के बावजूद भारत ने एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की देखरेख में सफल चुनाव आयोजित किए हैं। चुनाव में भारी संख्या में मतदाताओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। कानून के मुताबिक उन्हें नजदीक से नजदीक स्थान पर मतदान केंद्र उपलब्ध कराया जाता है ताकि वह दूरी पैदल तय की जा सके। चुनाव प्रचार अभियान की कठोरतापूर्वक निगरानी की जाती है। चुनावी धांधली और हिंसा की स्थिति में मतदान को रोक देना और पुनर्मतदान का आदेश देना कोई असामान्य बात नहीं है।

चुनावी प्रक्रिया के लोकतांत्रिक लाभांश: विश्वास, प्रभावोत्पादकता एवं वैधता

जनमत संबंधी आंकड़ों की उपलब्धता के आधार पर हम भारत की जनसंख्या के विभिन्न उपवर्गों में अपनी क्षमता के प्रति विश्वास को परख सकते हैं। प्रश्न कि 'क्या आप सोचते हैं कि आपके वोट का महत्व है?' की प्रतिक्रिया में इसका अनुमान कोई भी व्यक्ति, मतदाताओं में अपने मत के महत्व के प्रति बढ़ती समझदारी के लगातार बढते ग्राफ (वर्ष 1971 में कुल जनसंख्या में से 48.5 प्रतिशत से बढ़ कर वर्ष 2004 में 67.5 प्रतिशत) से स्वयं ही लगा सकता है। दिलचस्प है कि क्षमताबोध में यह वृद्धि, जिनके पास कोई विकल्प नहीं है अथवा उपरोक्त प्रश्न के प्रति उदासीन रवैया अपनाने वाले लोगों में कमी आने से ही आई है। मतदान के महत्व को नजरअंदाज करने वालों की संख्या पिछले तीन दशकों (1971 और 2004 के बीच) से अधिक समय से कुल आबादी के पांचवें हिस्से से भी कम पर स्थायी रूप से बनी हुई है। यही स्थिति मतदान के प्रति सकारात्मक रूख रखने वालों की भी है। इस प्रकार 1996 और 2004 दोनों वर्षों में जिन लोगों में मतदान के प्रति गंभीरता देखी गई उनमें पुरुष, उच्च वर्ग, ऊंची जाति और अधिक पढ़-लिखे मतदाता शामिल हैं। हालांकि पिछड़ी जातियों, मुसलमानों और ईसाईयों में भी मतदान के प्रति अच्छा झुकाव है। यह महत्वाकांक्षी नेताओं द्वारा राजनीतिक लामबंदी, मतदाताओं में निर्वाचन क्षेत्र के प्रति विशेष रुचि दिखाने का ही नतीजा है। (मित्रा और सिंह 2009)

बड़े पैमाने पर गरीबी और अशिक्षा के बावजूद भारत ने एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की देखरेख में सफल चुनाव आयोजित किए हैं। चुनाव में भारी संख्या में मतदाताओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। कानून के मुताबिक उन्हें नजदीक से नजदीक स्थान पर मतदान केंद्र उपलब्ध कराया जाता है ताकि वह दूरी पैदल तय की जा सके। चुनाव प्रचार अभियान की कठोरतापूर्वक निगरानी की जाती है।

मतदान के प्रति क्षमताबोध जैसा ही रुझान चुनावी वैधता में भी देखा जा सकता है। जो लोग दलों, चुनावों और सदनों पर आधारित मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था को इन सबके अस्तित्व से रहित संसदीय लोकतंत्र के मुकाबले बेहतर मानते हैं, वे इसका जवाब नकारात्मक भाव से देंगे। क्लिपबोर्ड हाथ में लेकर औपचारिक रूप से उत्तर लिखने वाले, कॉलेज की पढ़ाई समाप्त कर साक्षात्कार दे रहे युवाओं आदि के लिए इन प्रश्नों का उत्तर देना आसान काम नहीं होगा। वहीं राजनीतिक व्यवस्था को वैध मानने वाले लोगों की संख्या 1971 के 43.4 प्रतिशत के मुकाबले 2004 में 72.2 प्रतिशत हो गई है। यहां भी क्षमताबोध में यह वृद्धि मतविहिन और अनिश्चयी लोगों की संख्या में कमी के कारण ही आई है। बहुत छोटी आबादी (कुल जनसंख्या का लगभग दसवां भाग) यह मानती है कि संसदीय लोकतंत्र के स्थान पर कोई दूसरी व्यवस्था बेहतर होती। इसके आगे के विश्लेषण से पता चलता है कि कुल आबादी में से उच्च शिक्षित, ऊंची जाति और ईसाई, शहरी, पुरुष व युवा वर्ग के ज्यादातर लोग संसदीय लोकतंत्र की वैधता के पक्ष में हैं।

चुनाव सुधार के कुछ मील के पत्थर

संस्थानों, कानूनों और नियमों का विकास न केवल भारत के चुनावी प्रक्रिया को मजबूती प्रदान करता है बल्कि उसने आयातित सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को भारतीय परिस्थितियों में अपनाने तथा इसे लोकतंत्र के सांचे में ढालने व इसे मज़बूत करने के लिए आवश्यक कदम उठाने में विवेकपूर्ण सहयोग किया। बहु-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों का चलन एकल-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र के पक्ष में छोड़ दिया गया और ''फर्स्ट पास्ट द पोस्ट प्रणाली'' अपनायी गयी जिससे पहली बार चुनाव के पूर्व व बाद के चुनावी नियमों से परस्पर हितों के लिए गठबंधन बनाने में मदद मिली। इसके परिणामस्वरूप जैसा कि विविधतापूर्ण समाज (जाति, जनजाति, भाषा, जातीयता और मौलिक पहचान वाले अन्य लक्षणों में बंटा हुआ) से उम्मीद की जाती है, संकीर्ण, सांप्रदायिक पहचान को बढ़ावा देने के उलट एक सामान्य राजनीतिक श्रेणी बनाने की आवश्यकता पड़ी। जाति, जनजाति, भाषा, नस्ल और इस तरह की अन्य आदिकालीन पहचानों के आधार पर समूहों में विभाजित एक विविधतापूर्ण समाज में आनुपातिक विधि के इसी तरह के अनुप्रयोग की अपेक्षा की जा सकती है। हालांकि विशेषाधिकार का प्रतिनिधित्व- विशेषाधिकार से युक्त या अतिसंवेदनशील समझे जाने वाले (पिछडी जाति, पिछड़ी जनजाति, आंचलिक चुनावों में महिलाओं, और आंग्ला-भारतीयों के लिए) लोगों के लिए आरक्षण की शक्ल में आज भी मौजूद है। राष्ट्रपति चुनावों में संघ की तुलना में राज्यों को समान महत्व देने के लिए आनुपातिक प्रणाली को कायम रखा गया है। संविधान में इतने अधिक संशोधनों से लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली को मजबूती और चुनावों के प्रयोजन को विस्तार मिला है। 52वें संविधान संशोधन के रूप में दल-बदल कानून धारा 101, 102, 190 और 191 को संशोधित कर 1985 में दल-बदल

कानून पारित किया गया था। इस अधिनियम के तहत उस संसद सदस्य की सदस्यता समाप्त कर दी जाती है जो एक दल के टिकट पर चुनाव जीता है और जीतने के बाद किसी दूसरे दल में शामिल होता है। धारा 326 के 61वें संशोधन जिसके तहत मतदान की आयु 21 से घटाकर 18 की गई है, ने मताधिकार के प्रयोग को बहुत अधिक विस्तारित किया है। 1993 में पारित 73वां संशोधन संघीय ढांचे में तीसरे स्तर पर संवैधानिक परिवर्तन की शुरुआत थी जिसके तहत पहली बार स्थानीय स्तर पर एक तिहाई सीट महिलाओं द्वारा भरने का लक्ष्य निर्धारित कर सीधा लोकतंत्र बहाल किया गया और महिला सशक्तीकरण की दिशा में कदम उठाया गया। चुनावी प्रक्रिया को और अधिक बेहतर करने के बारे में समझ, चुनाव अधिनियम में सुधार पर संयुक्त संसदीय समिति (1971-72), 1975 की तारकुंडे समिति की रिपोर्ट, 1990 की गोस्वामी समिति की रिपोर्ट और 1998 में निर्वाचन आयोग द्वारा की गई संस्तुति जैसे कई सांस्थानिक कदमों को उठाकर विकसित किया गया है। चुनावी प्रथाओं में सबसे महत्वपूर्ण पहल भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा की गयी है जिसे धारा 324 के माध्यम से संविधान में अधिसूचित किया गया है कि स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के लिए निर्वाचन आयोग का अभिभावक की भूमिका में काम करना (मैकमिलन 2010) है। स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से चुनाव के संचालन के लिए प्रत्येक चुनाव में चुनाव आयोग राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के लिए एक आदर्श आचार संहिता जारी करता है। आयोग ने 1971 में कराए गए पांचवें आम चुनाव में पहली बार आचार संहिता जारी की और इसमें समय-समय पर संशोधन किया। इससे काफी मदद मिली है। हालांकि निम्नांकित बिन्दुओं को ध्यान में रखकर अभी और अधिक संशोधन करने की ज़रूरत है।

भारत की हिंसक चुनावी राजनीति और चुनाव सुधार की ज़रूरत

2014 का लोकसभा चुनाव 9 चरणों में पूर्ण किया गया। मतदान के सुरक्षित संचालन के लिए सुरक्षा बलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना पड़ता है। यह अपने आप में एक महत्वपूर्ण तथ्य है लेकिन इतने बड़े पैमाने पर और सफलतापूर्वक आम चुनाव संपन्न कराने के उत्साह में यह कहीं खो जाता है। नया इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन, बूथ पर तैनात बेहद उत्साहित स्टाफ और टेलीविजन कैमरों की मदद से रिपोर्टिंग करने वाले चेहरों के बावजूद हिंसा की प्राणघातक घटनाओं पर काबू पाने के लिए चुनाव केंद्रों पर सिपाहियों की तैनाती करनी पड़ती है। छत्तीसगढ़ में एक पुलिस स्टेशन के बाहर दिन दहाड़े एक माओवादी हमले में मारे गए अर्द्धसैनिक बलों की लाशों की वीभत्स तस्वीरें पूर्वी भारत के नक्सल प्रभावित इलाकों में चुनाव प्रचार के जोखिम को बयां करते हैं। लोगों को मारने और चुनाव की घोषणा का संयोग आकस्मिक नहीं है। सुरक्षा बलों से सीधी मुठभेड़ माओवादियों के स्थानीय नियंत्रण की पुष्टि करने का सबसे प्रभावी तरीका है। इस प्रकार के हमले की रणनीति अच्छी तरह से तैयार की जाती है-इस प्रकार से वे जितना अधिक हथियार लूटते हैं और अपना प्रभाव दिखाते हैं उतना ही चुनाव बहिष्कार के अपने पूर्व घोषित को एजेंडे को बढ़ाने के प्रयास को मजबूती प्रदान कर रहे होते हैं। इन हिंसक धमकियों के मद्देनजर मतदान प्रक्रिया को नौ चरणों में विभाजित करना पड़ता है जो कि शांतिपूर्ण मतदान के लिए सैनिकों की तैनाती और हलचल के लिए जरूरी है। अर्द्धसैनिक बलों की उपस्थिति की आवश्यकता न केवल कश्मीर या पूर्वोत्तर जैसे असंवेदनशील जगहों के लिए पड़ती है बल्कि पूरे देश के निर्वाचन केंद्रों पर होती है। यह विडंबना ही है कि विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र में आम राय कायम करने के लिए भी सैन्य सुरक्षा की जरूरत पड़ती है। बीमारी को दूर करने के लिए इसके सुधार के बारे में बात करना एक सामान्य बात है। एक आलोचक लिखते हैं कि इस समय सबसे पहला काम जो करने की आवश्यकता है, वह है तीन भयानक चीजों- धनबल, बाहुबल और माफिया बल को समाप्त किए जाने की है। इनके अलावा चार सी- करप्शन (भ्रष्टाचार), क्रिमीनलाइजेशन (अपराधीकरण), कास्टिज्म (जातीयता), कम्युनलिज्म (सांप्रदायिकता) को भी दूर किए जाने की जरूरत है (शंकर 2004) लेकिन इस प्रकार के विचार सिर्फ रंगीन बयानबाजी और भारत का सबसे अच्छा राजनीतिक प्रवचन ही सिद्ध हुआ है। अफसोस की बात है कि इससे हमें कुछ भी फायदा नहीं हुआ क्योंकि कोई विशेष नीति, कार्य योजना या एक सांस्थानिक व्यवस्था लोगों को लाभ पहुंचाने की थ्योरी पर ही खड़ी होती है। समकालीन राजनीति पर पड़ने वाली हिंसा की छाया को दूर करने के लिए तीन मुद्दों पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है। पहला, राजनीतिक क्षेत्र के चहुंदिश फैले भ्रष्टाचार और अपराधीकरण के गठजोड़ (आरोप पत्रित जनप्रतिनिधि, काला धन, घूस और भाई-भतीजावाद) अपराध, चुनावी राजनीति और अव्यवस्था के सहजीविता के प्रत्यक्ष लक्षण हैं। उच्च पदों पर विराजमान लोगों द्वारा संस्थानों की वैधता पर बट्टा लगाने वाले इन क्रियाकलापों को निर्वाचन आयोग द्वारा दर्ज किया जाना चाहिए। केंद्र व राज्य सरकारों से कार्यकर्ता मांगने के बजाए चुनाव आयोग के पास स्वयं के ऐसे समर्पित कर्मचारी होने चाहिए जो कानूनी और चुनावी मनोविज्ञान से प्रशिक्षित हों जिनके पास एक निश्चित धनराशि और संवैधानिक कद हो। दूसरा आदर्श आचार संहिता- सभी प्रकार की चुनावी धांधली के खिलाफ रामबाण ईलाज से माओवादी, जो स्पष्ट रूप से चुनावी विकल्प का विरोध करता है, के मामले में कोई सहायता नहीं मिलती। हालांकि राजनीतिक दलों को खुलकर अथवा छिपकर माओवादियों से न सहायता लेने और न किसी प्रकार की सहायता व सुरक्षा देने का सख्त निर्देश दिया जाए तो संभवत: राज्य विरोधी ताकतों को स्थानीय राजनेताओं और उम्मीदवारों से मिलने वाली सहायता बंद हो सकती है। अंत में, भारत की सक्रिय न्यायपालिका और नागरिक समाज को यह याद रखने की जरूरत है कि 'भूखे लोग विद्रोह करते हैं' यह केवल आधी सच्चाई है। स्वयं को एक बेहतर रणनीतिक योद्धा समझने के कारण विद्रोह वे लोग करते हैं जो इसमें अपना सीधा लाभ देखते हैं और हमला कर भाग निकलने का मौका पा जाते हैं। इन विद्रोहियों को जिम्मेदार नागरिक में बदलने का उपाय मौखिक प्रवचन में नहीं है, बल्कि साथ ही साथ उनके लिए जीविकोपार्जन,

छत्तीसगढ़ में एक पुलिस स्टेशन के बाहर दिन दहाड़े एक माओवादी हमले में मारे गए अर्द्धसैनिक बलों की लाशों की वीभत्स तस्वीरें पूर्वी भारत के नक्सल प्रभावित इलाकों में चुनाव प्रचार के जोखिम को बयां करते हैं। लोगों को मारने और चुनाव की घोषणा का संयोग आकस्मिक नहीं है। सुरक्षा बलों से सीधी मुठभेड़ माओवादियों के स्थानीय नियंत्रण की पुष्टि करने का सबसे प्रभावी तरीका है। इस प्रकार के हमले की रणनीति अच्छी तरह से तैयार की जाती है

तालिका : 2
संस्थानों पर विश्वास

	सबसे अधिक	थोड़ा	बिल्कुल भी नहीं
चुनाव आयोग	45.9	31.1	23.0
न्यायपालिका	41.6	34.2	24.2
स्थानीय शासन	39.0	37.8	23.2
राज्य सरकार	37.2	43.6	19.2
केंद्र सरकार	35.2	42.5	22.3
निर्वाचित जनप्रतिनिधि	19.9	40.4	39.7
राजनीतिक दल	17.4	43.6	39.0
सरकारी कर्मचारी	17.2	40.4	42.3
पुलिस	13.0	29.9	57.1

स्रोत: मित्रा एंड सिंह, डेमोक्रेसी एंड सोशल चेंज (दिल्ली: सेज, 1999) पृष्ठ 260

सुरक्षा और संपत्ति का अधिकार सुनिश्चित करने, पुलिस और प्रशासन से सहयोग दिलाने और कानून व्यवस्था के पालन के लिए सांस्थानिक ढांचे में पंचायतों को अधिकार संपन्न करने में है।

आदर्श आचार संहिता को कोई संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं है। चुनाव आयोग कभी-कभी अपने अधिकारों से बाहर काम करने लगती है (एलिस्टर मैकमिलन, 2010, पृष्ठ 113)। आगे दी गयी तालिका से स्पष्ट है कि भारतीय मतदाता निगरानी करने वाले संस्थानों (सर्वोच्च न्यायालय, चयन आयोग और निर्वाचित जनप्रतिनिधियों) के बीच विश्वास में अंतर दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की निराशा तेजी से फैलती है और तनाव हिंसा का रूप ले लेती है, जिसके परिणामस्वरूप फिर से चुनाव जरूरी हो जाता है। देश भर में कहीं भी इस प्रकार के उपद्रव से उत्पन्न परस्थिति का सामना करने के लिए एवं आदर्श आचार संहिता के ठीक से अनुपालन के लिए जर्मन पार्टेनगेस्टज की तर्ज पर चुनाव आयोग की एक नौकरशाही व्यवस्था बनाए जाने की शीघ्र जरूरत है। यह व्यवस्था चुनावी प्रक्रिया, चुनाव अभियान के लिए धनराशि, दलों व उम्मीदवारों पर पैनी नजर रखने के कार्यों का ठीक से नियमन करेगी।

निष्कर्ष

विभिन्न परिपक्व लोकतंत्रों की तर्ज पर भारत में चुनाव सामाजिक विकल्पों में से व्यक्तिगत वरीयता का एकत्रीकरण है जिससे सरकार की नींव पड़ती है। शासन में पारदर्शिता के लिए योजना के कार्यान्वयन के लिए नौकरशाही को जिम्मेवार बनाकर, जागरूक मतदाता लोकतंत्र को विस्तार और मजबूती प्रदान करता है। उपनिवेशवादी शासन से बाहर निकलकर प्रतिस्पर्धी चुनाव में प्रवेश करना और आरंभिक चुनावों में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का प्रयोग उच्च सामाजिक वर्गों की भागीदारी से ही संभव हो सका। बाद के चुनावों में समाज के सभी वर्गों के मतदाताओं की भागीदारी बढ़ती चली गई। (मित्रा 2914) उपनिवेशवादी शासन के अंत के बाद स्थिर, धीरे-धीरे बढ़ने वाले उपायों जिससे पश्चिमी लोकतंत्र का विकास अवरुद्ध होता है उनके उलट एक बार में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का प्रयोग ज्यादा कारगर नहीं हुआ। आजादी के बाद पहले चुनाव में कांग्रेस छा गई, लेकिन 1967 के चुनाव में वामपंथी और दक्षिणपंथी दलों का गठबंधन सामने आया जिससे चुनावों की क्षमता को मजबूती मिली। 1971 के चुनाव के बाद प्रसिद्ध अधिनायकवादी सत्ता स्थापित हुई लेकिन 1977 के चुनाव बाद एक बार फिर से केंद्र में विपक्षी दलों के व्यापक गठबंधन का समय वापस आया जबकि 1989 से बहु-दलीय व्यवस्था और गठबंधन राजनीति शासन करती आ रही है। लोकतंत्र के मजबूती के संदर्भ में भारत के चुनावी प्रक्रिया की उपलब्धियां सेलिग हैरीसन (1968) की आशंका के मद्देनजर महत्वपूर्ण हो जाती है जिसमें उन्होंने इसके शीघ्र ही पतन की भविष्यवाणी व लोगों की अतिसक्रियता के कारण इसके अधोमुखी होने की बात कही थी, यह मजबूती जनभागीदारी में व्यापक अंतर के रूप में सामने आयी (हंटिंगटन 1968)। न ही भारत ऐसी स्थिति में रहा जिसे कड़े फैसले न ले पाने के कारण एक 'कमजोर राज्य' या 'शांतिपूर्ण अपंगता' के दौर में कहा जाता (मैरडल 1970)। लोकतांत्रिक साझेदारी, जिसकी शुरुआत ब्रिटिश शासन में 1980 में हो गई थी अब एक पूर्ण विकसित संस्थान का रूप ले चुकी है। निर्वाचन आयोग की निगरानी में यह संस्थान भारतीय मतदाताओं की व्यक्तिगत आवाज की जगह सामूहिक विकल्प प्रस्तुत करने का विश्वसनीय जरिया बन चुका हैं।

आज़ादी के बाद पहले चुनाव में कांग्रेस छा गई, लेकिन 1967 के चुनाव में वामपंथी और दक्षिणपंथी दलों का गठबंधन सामने आया जिससे चुनावों की क्षमता को मजबूती मिली। 1971 के चुनाव के बाद प्रसिद्ध अधिनायकवादी सत्ता स्थापित हुई लेकिन 1977 के चुनाव बाद एक बार फिर से केंद्र में विपक्षी दलों के व्यापक गठबंधन का समय वापस आया जबकि 1989 से बहु-दलीय व्यवस्था और गठबंधन राजनीति शासन करती आ रही है।

मैंने इस आलेख में यह तर्क दिया है कि चुनावी प्रक्रिया का आधारभूत ढ़ांचा-एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र और अधिक मतदान ने कुशलतापूर्वक एक उपनिवेशवादी शासन से मुक्त हुए व संकीर्ण और सांप्रदायिक पहचान वाली आबादी को जिसने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, अधिकार और सशक्तीकरण की समझ विकसित करने का काम किया है। वह तीव्र गति से नागरिक भाव को अपनाने की ओर है। उतरोत्तर चुनाव सुधार और निर्वाचन आयोग का लगातार बढ़ता कद और चुनाव के निष्पक्ष निगरानी की क्षमता ने लोकतंत्र और इसके अंगों को विकसित करने में काफी सहयोग किया है। हालांकि वैश्विक सांस्कृतिक गति के समय में भारत परमाणु शक्ति से लैस और उभरती अर्थव्यवस्था होने के कारण तीसरी दुनिया के लोकतंत्र की छाप शीघ्र ही समाप्त कर देगा। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में सफलतापूर्वक चुनाव संपन्न कराना, भारत को विश्व के श्रेष्ठ लोकतंत्रों के श्रेणी में शामिल कराता है। ❑

(लेखक हीडेलबर्ग विश्वविद्यालय के दक्षिण एशिया संस्थान में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर हैं। *पॉलिटिक्स इन इंडियाः स्ट्रक्चर, प्रोसेस एंड पॉलिसी* उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। वह ब्रिटेन के हल्ल एवं नॉटिंघम विश्वविद्यालय तथा बर्कले स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्यापन कर चुके हैं। शासन, नागरिकता, समझौते, तर्कसंगत चयन, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, शोध प्रविधि, तुलनात्मक राजनीति और दक्षिण एशियार्ड अध्ययन इत्यादि उनके पसंद के विषय हैं। ई-मेल : mitra@uni-heidelberg.le)

न्याय एवं अधिकार का लक्ष्य और भारतीय लोकतंत्र

शेष नारायण सिंह

एक समाज और देश के रूप में हमें याद रखना चाहिए कि लोकतंत्र को मज़बूती देने का काम राजनीतिक काम है। उसे किसी फॉर्मूले या नियम कानून के बल पर नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए ज़रूरी है कि सभी नागरिकों के आत्मसम्मान को महत्व दिया जाए। संसाधनों के मालिक़ाना हक़ तय करते वक्त स्थानीय लोगों को महत्व दिया जाए। नीतियां बनाते वक्त हर स्तर पर सब से संवाद की स्थिति पैदा की जाए। यह सुनिश्चित करना भी ज़रूरी है कि सबको न्याय मिले और यह दिखे भी कि न्याय हो रहा है

पूरी दुनिया में लोकतंत्र के भविष्य पर सवाल उठ रहे हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से ही अमरीका ने प्रचार कर रखा था कि शीत युद्ध के खात्मे के बाद सब कुछ ठीक हो जाएगा लेकिन शीत युद्ध में अमरीकी जीत के दावे के बाद भी आज लोकतंत्र के बुनियादी लक्ष्यों को हासिल नहीं किया जा सका है। गरीब और अविकसित देशों की बात तो बहुत दूर की कौड़ी है। सच्चाई यह है कि अति विकसित देशों में भी मानवाधिकारों के रक्षक के रूप में लोकतंत्र उतना सफल नहीं हो सका है जितनी उम्मीद की जा रही थी। यूरोप और अमरीका के बहुत सारे संगठनों ने शोध के बाद तय किया है कि एक अवधारणा के रूप में लोकतंत्र को रिक्लेम करने की ज़रूरत है। शीत युद्ध के बाद भविष्यवाणी की गयी थी कि एक राजनीतिक विधा के रूप में लोकतंत्र सबसे बड़ी, कारगर और सफल व्यवस्था बनी रहेगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ। आज लोकतंत्र के सामने सबसे बड़ी चुनौती न्याय और अधिकार की सुपुर्दगी की है। इंसानी मूल्यों के पोषक और रक्षक के रूप में राज्य और सरकार की उपयोगिता पर सवाल उठ रहे हैं। सबको मालूम है कि मनुष्य और मानवता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोकतंत्र सबसे ज़रूरी और उपयोगी साधन है लेकिन आज जो चुनौतियां हैं वे इसी बात को रेखांकित कर रही हैं कि लोकतंत्र विकास की तरकीबों में सुधार और गैर-बराबरी के हालात को कम करने में नाकाम पाया जा रहा है। दुनिया के हर इलाके में हिंसक संघर्ष हो रहे हैं। हिंसक संघर्षों को कम करना मानवता के अस्तित्व के सवाल से जुड़ा हुआ मुद्दा है। हमें मालूम है कि हिंसक संघर्ष का मुख्य कारण असुरक्षा होती है। असुरक्षा तब होती है जब समाज के एक वर्ग या कुछ वर्गों को यह अहसास हो जाए कि वे मुख्यधारा से अलग कर दिए गए हैं, या उनको ऐसा भरोसा हो जाए कि उपलब्ध तरीकों से वे बाकी लोगों के साथ बराबरी नहीं कर सकते। हिंसक संघर्ष के कारणों में वंचना भी एक अहम कारण है। जब किसी वर्ग को ऐसा शक़ हो जाये कि वह संसाधनों से वंचित कर दिया गया है या इसे यह आभास हो जाए कि लोकतंत्र में जो राजनीतिक शक्ति उसकी वजह से राज्य को मिलती है, वह एक व्यक्ति या समाज के रूप में उस से वंचित रह गया है, तो उसे परेशानी होती है और वह हिंसा को एक विकल्प के रूप में सोचने के लिए मज़बूर हो जाता है। लोकतंत्र को इस खामी को ठीक करने की कोशिश करनी पड़ेगी।

लोकतंत्र की स्थापना में संस्थाओं का बहुत बड़ा योगदान है लेकिन यह मानी हुई बात है कि लोकतंत्र का संचालन पूरी तरह से संस्थाओं के ज़रिये ही नहीं किया जा सकता। यह भी ज़रूरी है कि लोकतंत्र की संस्थाओं को टिकाऊ बनाने के लिए प्रयास किये जाएँ। इन संस्थाओं को न्याय के वाहक के रूप में विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि लोकतंत्र की संस्कृति को संस्थागत रूप देने की कोशिश की जाए। लोकतंत्र की संस्थाओं से जो अधिकार मिलते हैं उनका प्रयोग न्याय और बराबरी का निजाम कायम करने के लिए किया जाए। लोकशाही की संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने का सबसे प्रभावशाली तरीका यह है कि उसमें अधिकतर लोगों को शामिल करने की प्रक्रिया पर शोध किया जाए और उसको लागू करने की कोशिश की जाए। एक समाज और देश के रूप में हमें याद रखना चाहिए कि लोकतंत्र को मजबूती देने का काम राजनीतिक काम है। उसे किसी फॉर्मूले या नियम क़ानून के बल पर नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए ज़रूरी है कि सभी नागरिकों

के आत्मसम्मान को महत्व दिया जाए। संसाधनों के मालिक़ाना हक़ तय करते वक्त स्थानीय लोगों को महत्व दिया जाए। नीति बनाते वक्त हर स्तर पर सब से संवाद की स्थिति पैदा की जाए। यह सुनिश्चित करना भी ज़रूरी है कि सबको न्याय मिले और यह दिखे भी कि न्याय हो रहा है। यानी नीति निर्धारण, उसके परिपालन और उसके प्रभाव में हर तरह की पारदर्शिता लाना किसी भी अधिकारप्राप्त संस्था का मकसद होना चाहिए। सही बात यह है कि लोकतंत्र राजनीतिक शक्ति हासिल करने का सबसे मानवीय तरीका है। इसकी सफलता के लिए ज़रूरी शर्त यह है कि इस राजनीतिक शक्ति का इस्तेमाल सकारात्मक तरीके से किया जाना चाहिए, न्यायसंगत होना चाहिए और सबको यह पता होना चाहिए की वे भी राजनीतिक ताकत के इस्तेमाल की प्रक्रिया में शामिल हैं। लोकतंत्र या किसी भी राजव्यवस्था का मकसद और उसकी बुनियादी ज़रूरत इंसानी सुरक्षा है। अब तक पाया गया है की इंसानी सुरक्षा के नाम पर हासिल की गई शक्ति में कुछ ऐसी विसंगतियां आ जाती हैं जो लोकतंत्र को जड़ से कमज़ोर करती हैं। लोकतंत्र की सभी संस्थाओं में जांच और नियंत्रण की प्रक्रिया को स्थाई रूप से शामिल किया जाना चाहिए। लोकतंत्र के अंतर्राष्ट्रीय संस्थान की कई शोध परियोजनाओं से यह बातें खुलकर सामने आयी हैं।

इस लेख में लोकतंत्र से संबंधित इन्हीं सवालों के जवाब तलाशने की कोशिश की जायेगी। हमारे देश में लोकतंत्र अपेक्षाकृत बहुत ही नयी राजनीतिक व्यवस्था है। कुल बासठ साल पुरानी व्यवस्था में हर मुकाम पर अड़चनें आती रही हैं। सबसे बड़ी दिक्कत यह रही है की राजव्यवस्था के तत्व लोकशाही में घुस गए थे। जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के बाद जब लालबहादुर शास्त्री ने सत्ता संभाली तो शायद आनंद भवन और नेहरू परिवार के पुराने संबंधों की मुरव्वत के कारण उन्होंने नेहरू की बेटी इंदिरा गांधी को अपने मंत्रिपरिषद में शामिल कर लिया था। इंदिरा गांधी ने अपने जीवनकाल में ही अपने छोटे बेटे को अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी बना दिया था। बहुत ही दुखद परिस्थितियों में छोटे बेटे की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने बड़े बेटे को सत्ता सौंपने का फैसला किया। इंदिरा जी की मृत्यु भी बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण और दुखद हालात में हुई। उनकी मृत्यु के बाद उनके बेटे को सत्ता सौंप दी गई और इस तरह से एक वंशानुगत सत्ता की व्यवस्था स्थापित हो गयी। इंदिरा जी के परिवार का देश की केंद्रीय सत्ता पर वर्चस्व कायम हो गया था और एक समय तो ऐसा लगने लगा था की अपनी लोकशाही का भविष्य खतरे में है। इसके अलावा उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश आदि राज्यों में राजवंशीय परम्परा कायम हुई लेकिन 2013 में एक ऐसी प्रक्रिया शुरू हो गयी जिसके बाद सबको लगने लगा कि देश में वंशानुगत राजनीति की परम्परा ख़त्म होने वाली है। गुजरात के गांव से आए एक व्यक्ति ने केंद्रीय स्तर पर वंशवाद की राजनीति को चुनौती दी और हरियाणा के गांव से आए एक अन्य व्यक्ति ने राजनीतिक अभियान में अधिक से अधिक लोगों को शामिल करने की गांधीवादी पद्धति का फिर से सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया। बाद में हमने देखा कि आम आदमी पार्टी के अरविन्द केजरीवाल की चुनाव प्रचार की तरकीब को बड़ी पार्टियों ने भी अपनाया। उनकी पार्टी मे फैसला लेने की पद्धति पर बहुत सारे सवाल उठ रहे हैं लेकिन यहां इसका उल्लेख लोकतंत्र में चुनाव अभियान की महत्ता पर चर्चा करना मात्र है। आम आदमी पार्टी या उसके नेता अरविन्द केजरीवाल की चर्चा केवल तर्क को एक ठोस रूप देने के लिए इस्तेमाल किया गया है। अरविन्द केजरीवाल और उनकी पार्टी ने चुनाव प्रक्रिया और उसके ज़रिये शक्ति हासिल करने के व्याकरण को फिर से स्थापित किया। लोकतंत्र के विकास में यह उनका महत्वपूर्ण योगदान है लेकिन वंशवाद की राजनीति में वे कुछ भी नहीं कर पाए।

आज देश में एक ऐसी सरकार आयी है जिसके प्रधानमंत्री के पूर्वजों के बारे में उतनी ही जानकारी है जितनी कि सरकारी कागजों में होती है। इतिहास में उनके परिवार के किसी व्यक्ति का नाम कहीं नहीं आता। लोकतंत्र को प्रभावशाली बनाने में वंशवाद सबसे बड़ी बाधा है और फिलहाल लगता है की सत्ता के शीर्ष पर अब इस तरह की कोई व्यवस्था प्रभावशाली नहीं होने वाली है।

वंशवाद को चुनौती देने का काम निर्णायक रूप से गुजरात के वड़नगर से आए व्यक्ति ने किया। पूरे चुनाव अभियान के दौरान इस व्यक्ति ने वंशवाद को कभी भी फ़ोकस से नहीं हटने दिया। कांग्रेस के प्रथम परिवार के बारे में वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के संबोधनों के बारे में तरह-तरह के सवाल उठाये गए लेकिन उन्होंने मुद्दे को ठंडा नहीं पड़ने दिया। आज देश में एक ऐसी सरकार आयी है जिसके प्रधानमंत्री के पूर्वजों के बारे में उतनी ही जानकारी है जितनी कि सरकारी कागजों में होती है। इतिहास में उनके परिवार के किसी व्यक्ति का नाम कहीं नहीं आता। लोकतंत्र को प्रभावशाली बनाने में वंशवाद सबसे बड़ी बाधा है और फिलहाल लगता है की सत्ता के शीर्ष पर अब इस तरह की कोई व्यवस्था प्रभावशाली नहीं होने वाली है। अपने लोकतंत्र में इस बुराई के आने की जड़ में भी शायद आज़ादी के बाद की परिस्थितियां ज़िम्मेदार हैं। परंतु सरदार पटेल का राजनीतिक आचरण सामने रखकर देखें तो तस्वीर ज़्यादा साफ़ हो जायेगी। सरदार पटेल की बेटी मणिबेन उनके साथ ही रहती थी। मणिबेन की भूमिका सरदार पटेल के घर तक ही सीमित थी। एक बार जब उनका बेटा दिल्ली आया तो सरदार पटेल को अजीब लगा। उनका बेटा उन दिनों मुंबई में काम करता था और किसी कंपनी में अधिकारी था। कंपनी के किसी काम से आया था। सरदार पटेल ने उनको समझाया कि जब तक मैं यहां सरकार में काम कर रहा हूं तब तक दिल्ली आओ तो मेरे घर मत आओ। खुशी की बात यह है कि अभी-अभी देश में वंशवाद की राजशाही परम्परा को ध्वस्त करने वाला व्यक्ति भी अपने परिवार के किसी व्यक्ति को राजकाज में शामिल करने के खिलाफ है लेकिन वंशवाद का खात्मा केवल इंदिरा गांधी के वंशजों को सत्ता से बेदखल करने से नहीं होगा। क्योंकि सभी पार्टियों में बड़े नेताओं ने अपने परिवार के लोगों को महत्व दे रखा है जिसके कारण लोकतंत्र की बुनियादी अवधारणा प्रभावित होती है। अगर लोकतंत्र की रक्षा करनी है तो हर पार्टी में मौजूद राजशाही के तत्वों को कमज़ोर करना पड़ेगा। लोकतंत्र के बहाने वंश को स्थापित करने की कोशिश एक बड़ी समस्या है। जैसा कि इस आलेख की शुरुआत में कहा गया है कि लोकतंत्र के सामने सबसे बड़ी चुनौती न्याय और अधिकार की डिलीवरी की है। इस डिलीवरी को पारदर्शी तरीके से लागू किया जाना चाहिए। राजनीतिक विकास का सामंती और वंशवादी तरीका लोकतंत्र के लक्ष्यों का सबसे बड़ा दुश्मन है। वास्तव में इन्हीं को

खत्म करने के उद्देश्य से तो लोकशाही जैसी संस्थाओं का विकास हुआ था। आज भारत में यही दो रिवाज़ लोकतंत्र के विकास में सबसे बड़े बाधक हैं। संतोष की बात यह है कि देश के सबसे बड़े राजनीतिक खानदान के आधिपत्य पर लोकसभा चुनाव ने ज़बरदस्त असर डाला है। अब ज़रूरत इस बात की है कि अन्य दलों के अलावा खुद सत्ताधारी दल में जो परिवारवाद की जड़ें हैं उनको खत्म किया जाए। यह लोकतंत्र के विकास की सबसे बड़ी शर्त है।

लोकतंत्र के विकास के लिये सामंती सोच के तौर-तरीकों को भी ख़त्म करना पड़ेगा। आमतौर पर देखा गया है कि चुनाव की प्रक्रिया ख़त्म होते ही जो व्यक्ति निर्वाचित होता है उनमें से कुछ लोग अपने आपको राजा समझने लगते हैं। इस रिवाज़ को भी खत्म करना पड़ेगा। इस लेख के शुरुआत में जो प्रतिस्थापना की गयी है कि मनुष्य और मानवता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोकतंत्र सबसे ज़रूरी और उपयोगी साधन है लेकिन आज जो चुनौतियां हैं वे इसी बात को रेखांकित कर रही हैं कि लोकतंत्र विकास की तरकीबों में सुधार और गैरबराबरी की हालात को कम करने में नाकाम पाया जा रहा है। इस तरह के हालात पैदा होने और उनके नासूर की हद तक नुक़सान पहुंचाने की क्षमता हासिल कर सकने का कारण यह है कि निर्वाचित लोग लोकतांत्रिक तरीकों से चुनकर आते हैं लेकिन फ़ैसलों में मनमानी करने लगते हैं। फ़ैसलों में न्याय की कमी का सबसे बड़ा कारण यह है कि जनप्रतिनिधि लोकतांत्रिक तरीके से स्थापित की गयी संस्थाओं को नज़रअंदाज़ करते हैं। इस कमी के कारण न्याय की डिलीवरी नहीं हो पाती। ज़रूरी है कि सबकुछ नये तरीके से कर सकने के जनादेश के साथ आए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी लोकतंत्र में घुस चुकी राजकाज की इस सामंती प्रवृत्ति का खात्मा करने की योजना को गंभीरता से लें। हालांकि सरसरी तौर पर देखने से लगता है कि उसकी शुरुआत हो चुकी है। पिछली सरकार में अगर मनमानी करने की संस्कृति को रोक लिया गया होता तो जिस तरह से दूरसंचार घोटाले को अंजाम दिया गया शायद वह न हो पाता। हर मंत्रलाय के प्रभारी, अधिकारियों को निर्णय प्रक्रिया के सुचारू संचालन की ज़िम्मेदारी देकर मौजूदा सरकार के प्रधानमंत्री ने यह पक्का कर दिया है कि अब दूरसंचार घोटाला जैसा कोई घोटाला करने के पहले मंत्री अपनी सीट गंवाने का ख़तरा मोल ले रहा होगा। ज़रूरत इस बात की है कि सामंती और मनमानी फैसलों की कुछ निर्वाचित प्रतिनिधियों की आदतों पर रोक लगाई जाए।

राजनीति शास्त्र के विख्यात प्रोफेसर आशुतोष वार्ष्णेय ने अपनी ताज़ा किताब "बैटिल्स हाफ वन: इंडियाज़ इम्प्राबेबिल डेमोक्रेसी" में लिखा है कि भारत की आज़ादी के बाद तीन परियोजनाएं सबसे महत्वपूर्ण थी जिनको कि नए लोकतंत्र को हासिल करना था। पहली, राष्ट्रीय एकता को सुरक्षित करना, दूसरी सामाजिक व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर मौजूद भारतीयों के लिए न्याय सुनिश्चित करना और उनको गरिमापूर्ण जीवन देना और तीसरी परियोजना थी कि चारों तरफ फैली हुयी गरीबी को खत्म करना।

राजनीति शास्त्र के विख्यात प्रोफेसर आशुतोष वार्ष्णेय ने अपनी किताब *बैटिल्स हाफ वन: इंडियाज़ इम्प्राबेबिल डेमोक्रेसी* में लिखा है कि भारत की आज़ादी के बाद तीन परियोजनाएं सबसे महत्वपूर्ण थी जिनको कि नए लोकतंत्र को हासिल करना था। पहली, राष्ट्रीय एकता को सुरक्षित करना, दूसरी सामाजिक व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर मौजूद भारतीयों के लिए न्याय सुनिश्चित करना और उनको गरिमापूर्ण जीवन देना और तीसरी चारों तरफ फैली गरीबी को ख़त्म करना। सभी राष्ट्रों के लिए इस तरह के लक्ष्य रखना सामान्य बात है। हमारे संस्थापकों ने मंसूबा बनाया था कि आज़ादी का लाभ सबको मिल सके और उसी जद्दोजहद में शुरू से ही हमारा लोकतंत्र लगा हुआ है। पिछले 60 वर्षों के सफ़र में बहुत अड़चनें आयी जिनमें से कुछ को इस लेख में गिनाया भी गया है। भारत की लोकशाही की खासियत है कि समय-समय पर उनको दुरुस्त करने की कोशिश भी होती रहती है। लेकिन सच्ची बात यह है कि सही लोकतंत्र की स्थापना के लिए बहुत अधिक प्रयास किये जाने हैं। ❑

(लेखक हिन्दी दैनिक *देशबन्धु* के राजनीतिक संपादक हैं। लेख में शामिल विचार लेखक के निजी विचार हैं। ई-मेल : sheshji@gmail.com)

योजना

आगामी अंक

अगस्त 2014

शहरी नियोजन (विशेषांक)

सितंबर 2014

असंगठित क्षेत्र

पढ़ें उनसे जिनकी प्रमाणिकता निर्विवाद है।

GS ACADEMY

रजनीश राज
इतिहास, कला एवं संस्कृति

धर्मेन्द्र कुमार
नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा एवं अभिरुचि

राजेश मिश्रा
राज व्यवस्था एवं शासन, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, आंतरिक सुरक्षा

आलोक रंजन
भूगोल, पर्यावरण, आपदा प्रबंधन

विशेषज्ञ समूह द्वारा
भारतीय अर्थव्यवस्था

धर्मेन्द्र (समाजशास्त्र)
सामाजिक मुद्दे

रितेश जायसवाल
सामान्य विज्ञान एवं विज्ञान प्रौद्योगिकी

ज्ञान, अनुभव एवं परिश्रम के त्रिकोण से निर्मित अतिविशिष्ट टीम

★ **FOUNDATION BATCH-2015** ★

प्रवेश प्रारंभ

- ★ व्यापक व गहनतम अध्ययन पद्धति।
- ★ अवधारणात्मक स्पष्टता पर विशेष बल।
- ★ सुव्यवस्थित, विस्तृत, स्वअध्ययन सामग्री व क्लास नोट्स।
- ★ समय-समय पर मुख्य परीक्षा पैटर्न पर टेस्ट।

कक्षा प्रारंभ 21 July 2:30 pm

Office: B-17, 1st Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
011-45098365, 8376963001,8376845001

YH - 89/2014

भारत में अंगदानः परोपकारिता और कर्म के बीच द्वंद्व

सुभद्रा मेनन

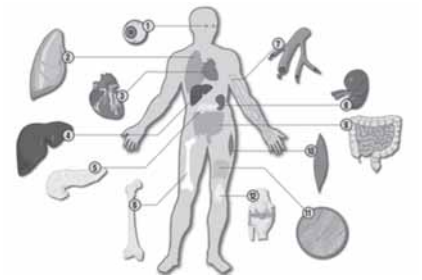

जीवित दाताओं से मानव कोशिकाओं और अंगों जैसे स्टेम सेल्स जो ब्लड कैंसर तथा ल्युकेमिया के रोगियों के लिए महत्वपूर्ण वरदान साबित होता है प्राप्त करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। हालांकि इसे बहुत सीधा-सरल होना चाहिए। अगंदान और प्रत्यारोपण उन लोगों की ज़िंदगियां बचा सकता है जिनकी मौत उनके अंगों के खराब होने से हो जाती है लेकिन यह बात यहीं खत्म हो जाती है कि भारत विश्व के उन देशों में से एक है जहां अंगदान की दर सबसे निम्न हैं

जिस संसार में हम रहते हैं वह अधूरा है। हर दिन, ऐसे अनेक लोगों की जान बचाई जा सकती है जिन्हें केवल अपने काम करना बंद कर चुके शरीर के किसी अंग के स्थान पर एक स्वस्थ अंग को प्रत्यारोपित किये जाने की ज़रूरत रहती है। कई तरह की बीमारियों और दुर्घटनाओं के चलते जैसे किडनी, हृदय में खराबी आ जाना या किसी सड़क हादसे में किसी विशेष अंग के प्रभावित होने से लोगों को इस बुरी स्थिति का सामना करना पड़ता है। इससे उनके पूरी तरह निष्क्रिय होने का ख़तरा रहता है। उदाहरण के लिए, किडनी और लिवर में खराबी आने के बाद केवल उनका प्रत्यारोपण ही सबसे प्रभावकारी समाधान रह जाता है।

ऐसे में अन्य लोगों में स्वस्थ हृदयों, फेफड़ों, आंखों के साथ-साथ अग्नाशय और आंतों की उपलब्धता ज़रूरत है। बीमारी के बढ़ते दबाव से इनमें सूजन आ जाता है जिसके लिए लोगों से स्वस्थ अंगों की ज़रूरत है जो उन ज़रूरतमंदों को जो, बड़ी चाह से जीवन रक्षक प्रक्रिया के तौर पर अपने अंग प्रत्यारोपण के लिए एक नये जीवन का इंतजार करते हैं।

हमेशा की तरह, किसी सही नीति और सुधार संबंधी कार्यक्रमों में आने वाली सबसे बड़ी बाधा विश्वास की कमी और पूरे आंकड़ों का न होना है। भारत में जो छिटपुट आंकड़े इकट्ठे किए गए हैं वे अलग-अलग ज़रूरतों के आधार पर संकलित हैं। उदाहरण के लिए, एक अध्ययन में यह बात सामने आई कि प्रत्येक 10 वयस्कों में से एक व्यक्ति क्रोनिक किडनी डिजीज (सी.के.डी.) का शिकार है जिसे या तो डायालिसिस की ज़रूरत है या एक स्वस्थ किडनी की ज़रूरत है। कम से कम पांच लाख लोग किसी न किसी समय पर इसका इसतेमाल कर रहे है। इनमें से केवल 6,000 को किडनी दान में मिल पाती है और 30,000 के लगभग डायालिसिस पाने में सक्षम होते हैं। इसका मतलब यह है कि 4.5 लाख मरीजों को इस संबंध में किसी तरह की कोई उम्मीद नहीं होती। यह स्पष्ट है कि शवों के सुप्रबंधित अंग प्रत्यारोपण से भारतीय जनसंख्या में ज़रूरतमंदों की एक विशाल संख्या के लिए ज़िंदगी और मौत का फ़ासला कम हो सकता है।

जीवित दाताओं से मानव कोशिकाओं और अंगों जैसे स्टेम सेल्स जो ब्लड कैंसर तथा ल्युकेमिया के रोगियों के लिए महत्वपूर्ण वरदान साबित होता है प्राप्त करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। हालांकि इसे बहुत सीधा-सरल होना चाहिए। अंगदान और प्रत्यारोपण उन लोगों की ज़िंदगियां बचा सकता है जिनकी मौत उनके अंगों के खराब होने से हो जाती है लेकिन यह बात यहीं खत्म हो जाती है कि भारत विश्व के उन देशों में से एक है जहां अंगदान की दर सबसे निम्न हैं।

यहां दोबारा यह बात कहनी होगी कि हमारे स्वास्थ्य संबंधी आंकड़े ठोस नहीं है। कुछ आंकड़ों के मुताबिक, भारत में प्रति दस लाख में केवल 0.16 लोग ही अंगदान करते हैं जो बेहद कम है। यह दर्शाता है कि भारत में दस लाख लोगों में भी पूरी तरह से अंगदान करने वाला नहीं है जो बहुत ही निम्न स्तर का अंगदान है। यूरोप में यह आंकड़ा 27, अमरीका में 20-25 और स्पेन में 35 है। यह कहा जा सकता है कि भारत में प्रतिवर्ष 25,000 अंगदान करने वालों की ज़रूरत है जबकि इस आंकड़े से पता चलता है कि यहां इनकी संख्या मुश्किल से सैकड़ों में है। यहां पर साल में लगभग एक लाख सड़क दुर्घटनाएं होती हैं जिनमें से अधिकतर मौतें मस्तिष्क आघात के

कारण होती हैं। यदि अंगों का प्रत्यारोपण सही ढंग से किया जाने लगे तो भारत में हर साल कम से कम पांच लाख जानें बचाई जा सकती है लेकिन इन लोगों की मौत हो रही है। यह एक सच्चाई है जिसे बदलने की ज़रूरत है और अलग-अलग स्तरों पर इस बदलाव को बढ़ावा देने के लिए प्रयास जारी है।

अंगदान : व्यवस्थित तथा प्रभावशाली प्रतिक्रिया की ज़रूरत

स्वभावत: किसी अंग को दान करना या इसका प्रत्यारोपण न केवल वैध-चिकित्सीय प्रक्रिया है, बल्कि यह पूरी तरह से मानव स्वभाव और परोपकारिता पर आधारित है। शवों के आधार पर होने वाला प्रत्यारोपण अधिकतर मरने वाले व्यक्ति के परिवार और संबंधियों की दयालुता पर किया जाता है। यह मरने वाले के ठीक कुछ समय पहले स्वेच्छा या लिखित याचना के सम्मान में भी हो सकता है। प्रत्यारोपण से जुड़े जीवित व्यक्ति को देखकर महसूस किया जा सकता है कि अंगदान करने वाले व्यक्ति के लिए यह कितना मुश्किल चिकित्सकीय फ़ैसला है।

अंगों के सफल प्रत्यारोपण के लिए आवश्यक सर्जरी और चिकित्सकीय प्रक्रिया को इससे जुड़े खर्च तथा लंबे इंतजार ने बिगाड़ कर रख दिया है। अंग प्रत्यारोपण के सामान्य मामलों में वैध उपकरणों पर प्रतिबंधित रुख और दिशानिर्देशों से यह असुविधाजनक माना जाता है। एक ओर जहां, यह लोगों की दयालुता और पर्याप्त सुव्यवस्थितता पर निर्भर करता है। वहीं, अंगदान और प्रत्यारोपण का पूरा क्षेत्र चाहे वह जीवित या शव आधारित हों, हर किसी के लिए जटिल है।

पुराने समय से, मूल्यवान जीवन को बचाने की तीव्र इच्छा या अत्यधिक गरीबी के ख़िलाफ़ संघर्ष ने अंगों के अवैध कारोबार को बढ़ावा दिया है। अंगों के सफल प्रत्यारोपण के लिए आवश्यक सर्जरी और चिकित्सकीय प्रक्रिया को इससे जुड़े खर्च तथा लंबे इंतजार ने बिगाड़ कर रख दिया है। अंग प्रत्यारोपण के सामान्य मामलों में वैध उपकरणों पर प्रतिबंधित रुख और दिशानिर्देशों से यह असुविधाजनक माना जाता है। एक ओर जहां, यह लोगों की दयालुता और पर्याप्त सुव्यवस्थितता पर निर्भर करता है। वहीं, अंगदान और प्रत्यारोपण का पूरा क्षेत्र चाहे वह जीवित या शव आधारित हों, हर किसी के लिए जटिल है।

इस पृष्ठभूमि में कई बार संबंधित हितधारक और वे लोग जो ठोस तथा रचनात्मक निर्णय ले सकते हैं, वे शुतुरमुर्गी रवैया अपनाकर सच्चाई से मुंह मोड़ने की कोशिश करते हैं जिसके परिणामस्वरूप पीड़ितों के अंग नाकाम होने लगते हैं और इलाज के लिए उन्हें पर्याप्त देख-रेख नहीं मिलती है।

जो भी इस दुनिया में आता है अपनी ज़रूरत के तौर पर फिर चाहे वह किसी बीमारी के अंतिम चरण में हो या किसी दुर्घटना से ग्रस्त हों, उसे अपने क्षतिग्रस्त अंग की मरम्मत के लिए इन परेशानियों का सामना करना पड़ता है :

* एक अंग के लिए चिकित्सकीय आवश्यकता के साथ एक व्यक्ति के लिए ज़िंदगी और मौत की ज़रूरत है जहां समय एक महत्वपूर्ण तत्व है।
* अंग प्रत्यारोपण अत्यधिक महंगा है जो अधिकतर लोगों के लिए मुश्किल है।
* पुराने समय से, अंग व्यापार अवैध, गोपनीय गतिविधि के तौर पर फैला है जो गरीबी को कम करता है, बीते समय की इस गतिविधि पर रोक लगाने के लिए कानून बनाना इसमें बड़ा प्रतिरोधक है।
* एक अंगदाता पांच जान बचा सकता है लेकिन यहां अंगदान के संगठित पंजीकरण और उससे जुड़े चिकित्सकीय सुविधा देने वाले सार्वजनिक तथा निजी संस्थानों की संख्या बहुत कम है।
* प्रत्यारोपण के लिए अनुपयुक्त व्यवस्था भी इसे बहुत मुश्किल बनाती है साथ ही प्रत्यारोपण के प्रबंध और सहज दान में बाधा उत्पन्न करता है।
* जानकारी की कमी के चलते लोगों को समझाने में मुश्किलें पेश आती हैं विशेष तौर पर ब्रेन डेड की स्थिति में क्योंकि इस समय पर दिल तो सामान्य गति से धड़कता है लेकिन नियम होने के बावजूद लोगों को ब्रेन डेथ को स्वीकारना मुश्किल हो जाता है।

प्रत्यारोपण के लिए अंगदान और उसे फिर से पाने में उपरोक्त सभी कारणों को जन स्वास्थ्य के क्षेत्र में पूरी तरह नकार दिया जाता है जो व्यक्तिगत हानि के बीच चिंताओं और मृत्यु के चलते प्राय: नजर में नहीं आते हैं।

वर्षों से इन मुद्दों को उठाने और इसके लिए सुविधाजनक प्रबंध करने की कोशिशें की जाती रही हैं। इसलिए, अंगदान एक उपहार से भी अधिक होने के साथ-साथ यह एक तरह का दान भी है। निश्चित ही इसके लिए कुछ नियम-कानूनों की आवश्यकता होती है जिससे कि इस नए जमाने के उपचारात्मक समाधान के महत्वपूर्ण परिदृश्य को नियमित किया जा सके। इन नियमों का होना कुछ जोखिमभरा भी है क्योंकि मानव द्वारा परोपकार में किए गए काम होते नहीं हैं बल्कि इसके पीछे एक सोच होती है जो कुछ लोगों में दूसरों की ज़रूरत को महसूस कराती है और उन्हें एक उपहार देने को प्रेरित करती है लेकिन, सच्चाई तो यह है कि बढ़ती मांग और अंतहीन इंतजार के सामने भरपाई बिल्कुल भी नहीं है।

कानूनी ढांचा और दिशानिर्देश

आज से बीस साल पहले 1994 में भारतीय संसद ने मानव अंगों के प्रत्यारोपण का अधिनियम (टीएचओए) पास किया। इसका उद्देश्य भारत में उपचारात्मक लक्ष्य के लिए मानव अंगों को निकालने और उनके प्रत्यारोपण के लिए दिशानिर्देश प्रदान करना था। फरवरी 1995 में यह अधिनियम लागू हुआ जिसके बाद गोवा, हिमाचल प्रदेश और महाराष्ट्र तथा सभी केंद्र शासित प्रदेशों में अमल में लाया गया। इसके बाद यह जम्मू और कश्मीर तथा आंध्र प्रदेश के अलावा देश के सभी राज्यों द्वारा अपनाया गया क्योंकि इन राज्यों में अंगदान और प्रत्यारोपण के लिए अपने नियम कानून लागू हैं। इसका प्राथमिक कार्य स्वाभाविक रूप से मानव अंगों के स्थापित हो रहे अवैध व्यापार को देखना था। अधिनियम के तहत मानव अंगों को निकालने का अधिकार, अंगों के संरक्षण, मानवा अंगों को निकालने वाले अस्पतालों के नियमों, मानव अंगों को जमा करना या उनका प्रत्यारोपण, उपयुक्त प्राधिकरण के कार्य, अस्पतालों का पंजीकरण और अधिनियम

प्रत्यारोपण के लिए अंगदान और उसे फिर से पाने में उपरोक्त सभी कारणों को जन स्वास्थ्य के क्षेत्र में पूरी तरह नकार दिया जाता है जो व्यक्तिगत हानि के बीच चिंताओं और मृत्यु के चलते प्राय: नजर में नहीं आते हैं।

के प्रावधानों की अवहेलना करने वालों को दंडित करने का प्रावधान किया गया था। तब से, कई संशोधन किये गए हैं और भारत सरकार ने 2011 में टीएचओ संशोधन अधिनियम पारित किया जिसमें हृदय, यकृत, अग्न्याशय और वृक्क के अलावा अस्थियों, त्वचा, हृदय वाल्व व कार्निया की ही तर्ज पर उत्तकों के स्थानांतरण के लिए भी प्रावधान किये गए हैं। साल 2013 में भारत सरकार ने परिवार एवं स्वास्थ्य कल्याण विभाग के साथ मिलकर '2013 में मानव अंगों और उत्तकों के प्रत्यारोपण के लिए नियम' नाम से संशोधित करने के लिए किया गया। यह बीते कुछ वर्षों में विभिन्न दावेदारों, इससे जुड़े लोगों और संस्थानों की पैरवी का ही नतीजा था क्योंकि इस अधिनियम से पहले मानव अंगों के अवैध व्यापार अंगदाताओं और प्रत्यारोपणों के लिए ज़रूरतों के लिए बाधा के रूप में सामने आते थे।

सामान्य तौर पर यहां एक कानूनी ढांचा है। यह व्यवस्थित प्रक्रियाओं, निकायों और उपयुक्त प्राधिकरणों जो वैध अंगदान के लिए सहायक ढांचे बनाते है उन्हें स्पष्ट करता है लेकिन भारतीय समाज और मानव विकास तक में भी सामाजिक कानून का ज़मीनी स्तर पर लागू होना मुश्किल ही रहा है। कानूनी पेंचों को अमल में लाना कठिन हो सकता है जब वे किसी जटिल मुद्दे को उठाते हों। प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम, घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा और सबसे बाद में कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन शोषण (बचाव, प्रतिबंध और सुधार) अधिनियम जैसी इसकी अनेक मिसालें हैं। इन सबके बीच पीड़ित और अपराधी के बीच स्पष्ट संबंध की कमी, गवाहों की कमी आदि जैसे कई अन्य मुद्दे प्रमुख चुनौती बने हुए हैं। इसी कारण, टीएचओए के मामले में यह अवैध व्यापार पर नकेल कसने में इतना कामयाब नहीं हो पा रहा है जिसके चलते यह अंगदान के सही मामलों में एक मुसीबत बनकर खड़ा हो जाता है। अंगदान के साथ, अधिनियम में सबसे अधिक संवेदनशील मुद्दा ब्रेन डेड उठाया गया था।

निर्बाध अंग प्रत्यारोपण में सबसे बड़ी समस्या ब्रेन डेड होने जा रहे दाता की घोषणा है जिसमें उस समय तक भी हृदय धड़कता है। यह घोषणा केवल अस्पतालों द्वारा आधिकारिक रूप से अंगदान के लिए स्वीकार की जाती है। ज्यादातर, ब्रेन डेड लोगों को ब्रेन डेड माना जाता है। ऐसी स्थिति में हृदय 48 घंटों तक भी धड़कता रहता है। यह अंगदान के लिए बड़ा कठिन समय है, लेकिन यह मुश्किल इसलिए भी है क्योंकि परिवार वालों और प्रियजनों जो केवल इसे व्यक्ति की अचेत अवस्था मानते हैं, ऐसे समय पर उनका अंग दान के लिए सहमत होना मुश्किल है।

अंगदान की प्रक्रिया बहुत ही कठिन है विशेषतया किसी बीमार व्यक्ति के परिवार वालों या उसके प्रियजनों के नज़रिये से देखा जाए जिन्हें एक स्वस्थ अंग की बेहद ज़रूरत होती है लेकिन, तुरंत ज़रूरत इसकी जटिलता को बढ़ा देती है। पहले प्राधिकार से ब्रेनडेथ के कारण को स्वीकृति, उसके बाद मृतक के परिजनों की पूर्ण सहमति और अंत में कागज़ी कार्रवाई और दस्तावेज जिन्हें राज्य के उपयुक्त प्राधिकरण से पूरा किया गया है इसके बाद में अंततः अस्पताल द्वारा औपचारिक अनुमति। किसी व्यक्ति को ब्रेनडेड घोषित करने के लिए अधिनियम ने जो जरूरतें बताई है वे हैं- चार डॉक्टरों की एक टीम (उनमें से एक न्यूरोलॉजिस्ट) ब्रेनडेथ की पुष्टि करे, इस उद्देश्य से किए गए सभी टेस्ट छह घंटे बाद दोबारा किए जाएं। समय के बीच का यह फासला एक सफल और सुचारू अंग प्रत्यारोपण के बीच बड़ी बाधा साबित हो सकता है।

निर्बाध अंग प्रत्यारोपण में सबसे बड़ी समस्या ब्रेन डेड होने जा रहे दाता की घोषणा है जिसमें उस समय तक भी हृदय धड़कता है। यह घोषणा केवल अस्पतालों द्वारा आधिकारिक रूप से अंगदान के लिए स्वीकार की जाती है। ज्यादातर, ब्रेन डेड लोगों को ब्रेन डेड माना जाता है। ऐसी स्थिति में हृदय 48 घंटों तक भी धड़कता रहता है। यह अंगदान के लिए बड़ा कठिन समय है, लेकिन यह मुश्किल इसलिए भी है क्योंकि परिवार वालों और प्रियजनों जो केवल इसे व्यक्ति की अचेत अवस्था मानते हैं, ऐसे समय पर उनका अंग दान के लिए सहमत होना मुश्किल है।

अच्छे काम के लिए जागरुकता, पैरवी और ज़रूरत

आज कई विशेषज्ञ ऐसे कानून की पैरवी कर रहे हैं जो मानव अंगों के अवैध व्यापार पर प्रतिबंध लगाए तथा गरीबों के शोषण को भी बंद करे। हालांकि, भारतीय कानून इस संबंध में सुरक्षा के उपायों की कोशिश कर रही है वहीं, इस प्रक्रिया को धीमा भी कर रही है। अंगदान और प्रत्यारोपण के मामले में यह चुनौती भरा है क्योंकि प्रभावी प्रत्यारोपण और किसी ज़िंदगी को बचा पाना कभी-कभी बहुत ही कठिन हो जाता है। अमेरिका में कम जनसंख्या के बावजूद लाखों लोग अंगदान के लिए हस्ताक्षर करते हैं वहीं, इसके अनुपात में भारत की 1.2 करोड़ जनता का इस दान में अनुपात बहुत कम है।

क्या आपको हाल ही में अंगदान से जुड़ा कोई आकर्षक संदेश या अभियान चलता दिखाई दिया है? सूचना और जागरुकता हमेशा की तरह जटिल है, और यह भी विडंबना है कि अंगदान की आवश्यकता के लिए जनहित में मुश्किल ही कोई संदेश या अभियान शुरू किया गया हो। शायद ही, रक्तदान या नेत्रदान को बढ़ावा देने के अलावा कोई अन्य अभियान दिखे। कितने लोगों को आज यह जानकारी है कि वे अपने ब्रेन डेड प्रियजन के अंगदान से कितने लोगों को जीवन दे सकते हैं?

मुश्किल से इस बारे में केवल उन्हीं लोगों को जानकारी है जिन्हें अपने विचारों और परोपकारी इच्छाओं का ज्ञान होता है। यह कहा जाता है कि बोनमेरो (मज्जा) का दान रक्त दान की ही तरह सरल है, लेकिन वास्तव में जब इसका समय आता है तब अपनी स्टेम सेल को दान देने के बाद संभावित असहजता और अधिक गंभीर प्रभावों के बारे में सुनकर बहुत से समर्थ दाता इससे पीछे हट जाते हैं। वहीं, शव आधारित अंगदान में दाता को कोई प्रभाव नहीं पड़ता जबकि जीवित दाता से उत्तक लेना एक बड़ी चुनौती है। यद्यपि बाहरी रक्त स्टेम कोशिका का दान बिना शल्य क्रिया के संभव है और बार स्टेम सेल दान करने से पहले दाता को एक दवा देनी ही जरूरी होती है जिससे कि उसकी स्टेम कोशिकाओं को बढ़ाया जा सके। साथ ही, डीएनए प्रौद्योगिकी द्वारा निर्मित एक दवा फिल्ग्रास्टिम भी दी जाती है जिसके कुछ प्रभाव पड़ते हैं जो हानिकारक नहीं होते हैं। यदि ज्यादा भी हो तो प्लीहा के सबसे ज्यादा प्रभावित होने की संभावना होती है। इसलिए, जानकारी होना सबसे प्रमुख तत्व है और जब एक बार लोगों को इस प्रक्रिया के बारे में पता चल जाता है तो कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए। दुनियाभर में

यह देखा गया है कि अभी भी बड़े स्तर पर जानकारी, सूचना और जागरुकता की जरुरत है।

हाल ही में, यह समस्या दुनियाभर के सामने आई, जब अमरीकी स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की प्रोफेसर नलिनी अम्बाडी ने ब्लड कैंसर के एक रूप 'एम्यूर माइलॉएड ल्यूकेमिया' से दम तोड़ दिया। भारतीय-अमरीकी मूल की अम्बाडी परिवार और दोस्तों ने नलिनी के शरीर के अनुरूप स्टेम सेल्स की बड़े स्तर पर खोज शुरू की। यह कोशिश एक ऐसे दाता को ढूंढ़ने के लिए की गई थी जिसकी स्वस्थ ब्लड स्टेम सेल्स (वे कोशिकाएं जो सभी मानव रक्त कोशिकाओं का निर्माण करती है) के साथ बोनमेरो (मज्जा) को रिजनरेटिव थैरेपी के लिए इस्तेमाल किया जा सके। इस स्वस्थ एंव नई रक्त कोशिकोओं के पुनरुत्पादन की शुरुआत स्टेम सेल्स के प्रत्यारोपण द्वारा कराया जा सकता है। यह मानव चिकित्सा के प्रगतिशील क्षेत्र में एक जटिल तरीका है वो भी ऐसे समय में जब बढ़ती बीमारियों में स्टेम सेल्स थैरेपी एक विकल्प बचा था। उनके मरने से पहले दर्जनों संभावित नमूनों को मिलाया गया था, लेकिन उनमें से आधे तो सही नहीं थे और अन्य दाता समय आने पर इससे मुकर गए। सोचना भी मुश्किल है कि ऐसी परिस्थियों में इतना सब देखना अम्बाडी परिवार के लिए कितना दुखद रहा होगा।

वर्तमान समय में, आगे बढ़ने के लिए मानव के इस असाधारण संघर्ष की कहानियों के बारे में जरूर विचार करना चाहिए जिससे इसका हल और उसे मूर्त रूप जा सके। समस्या यह है कि शुरुआत से लेकर अंत तक किसी भी भी खोज में नकारात्मक छवियां दिखती हैं- बताना मुश्किल है कि इसका निष्कर्ष क्या होगा। इसे क्या होना चाहिए- सफलता की एक अच्छी कहानी या चीजों के ठीक से काम नहीं कर पाने पर परिजनों की घबराहट। अगर हम गैर-जरूरी मौतों से इन ज़िंदगियों को नहीं बचा पा रहे हैं तो नियम कानूनों और संसाधनों को इसमें क्यों लगा रहे हैं। इन दिल-दुखाने वाले सवालों का जवाब चाहिए।

नेत्रदान के मामले में यह बिल्कुल आसान दिखाई देता है क्योंकि इसमें या तो मरने वाले की इच्छा शामिल होती है या फिर परिवार ही इस दान का निर्णय कर लेता है लेकिन यहां भी निर्णय लेने में एक पक्षीयता ही परेशानी बन जाती है। मौजूदा समय में प्रोत्साहन दिए जाने के बावजूद इसमें बड़ा अंतर है। कई साल पहले, इस क्षेत्र के एक विशेषज्ञ ने मुझे बताया था कि ''दाता यदि सभी तरह के फार्म भरकर दस्तावेजों को तैयार कर भी लेता है फिर भी परिवार वालों के लिए यह आसान नहीं होता कि अपने प्रियजन को खोने के मात्र कुछ घंटों के भीतर ही वे उसके स्वस्थ कॉर्निया को दान में देने का निर्णय ले सकें जबकि वह अब निरर्थक है।''

सही आंकड़े तो इकट्ठे नहीं किए गए हैं लेकिन मौटे तौर पर देखा जाए तो भारत में 12 लाख लोग नेत्रहीन हैं जिनमें से दो लाख लोगों को कॉर्निया न होने के चलते दृष्टिहीनता है जिसे मृतक के नेत्रदान द्वारा उसके स्वस्थ कॉर्निया के प्रत्यारोपण से ठीक किया जा सकता है। इनमें से दो लाख लोगों का इलाज इस तरह के प्रत्यारोपण से संभव नहीं है लेकिन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग के अंतर्गत चलाए जा रहे दृष्टिहीनता नियंत्रण के राष्ट्रीय कार्यक्रम के आंकड़ों के अनुसार, साल 2011-2012 में देश में कुल 49,000 आंखों का ही संग्रहण किया गया।

आज कई विशेषज्ञ ऐसे कानून की पैरवी कर रहे हैं जो मानव अंगों के अवैध व्यापार पर प्रतिबंध लगाए तथा गरीबों के शोषण को भी बंद करे। हालांकि, भारतीय कानून इस संबंध में सुरक्षा के उपायों की कोशिश कर रही है वहीं, इस प्रक्रिया को धीमा भी कर रही है। अंगदान और प्रत्यारोपण के मामले में यह चुनौती भरा है क्योंकि प्रभावी प्रत्यारोपण और किसी ज़िंदगी को बचा पाना कभी-कभी बहुत ही कठिन हो जाता है। अमेरिका में कम जनसंख्या के बावजूद लाखों लोग अंगदान के लिए हस्ताक्षर करते हैं वहीं, इसके अनुपात में भारत की 1.2 करोड़ जनता का इस दान में अनुपात बहुत कम है।

केन्द्र व राज्यों के बीच संबंधों की सामान्य स्थिति और तनावों के बावजूद कुछ राज्यों मिसाल आयम भर बताया है कि कैसे इस दिशा में सफलता हासिल की जा सकती है।

तमिलनाडु राज्य ने बीते कुछ समय में इस क्षेत्र में बेहतर काम किया है। इसके लिए यहां प्रगतिशील कानूनों और नियमों, बड़े समूह और संगठित पंजीकरण का इस्तेमाल कर देश को बढ़ावा देने के लिए अच्छे स्वास्थ्य का प्रबंधन किया गया। यहां प्रत्येक वर्ष लगभग 80 हज़ार अंगदान होता है। तमिलनाडु सरकार के लिए जीवित या मृत दाताओं से प्रत्यारोपण का संगठन और समन्वय करना जटिल था। ऐसे में अंगदान और उसके प्रत्यारोपण के लिए एक ढांचा तैयार किया गया जिसके अंतर्गत अंगों को पक्षपातमुक्त तरीक़े से ज़रूरतमंदों को प्रत्यारोपित किया जा सकता है। राज्य में यह कार्यशालाओं, परामर्शों, सुझावों तथा शोध के बाद इस संबंध में दिशा निर्देशों को लागू किया जा सका। तमिलनाडु आज, शव आधारित प्रत्यारोपण में सबसे अग्रणी है। इसके साथ ही, केरल में साल 2012 में प्रगतिशील आदेशों को जारी किया गया जिसके तहत कहा गया कि अंग प्रत्यारोपण में सरकार की सफलता भी, विशेष रूप से शव अंग प्रत्यारोपण केन्द्रों के साथ सावधानीपूर्वक समन्वय और प्रभावी दाता, प्रबंधन तथा अंग के प्रत्यारोपण पर निर्भर करता है। केरल में भी तमिलनाडु की ही तरह अंगदान और उसके प्रत्यारापेण व्यवस्था के आधार पर एक नेटवर्क स्थापित किया गया। हालांकि, इस क्षेत्र में बहुत कुछ तो किया जा चुका है फिर भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

यहां एक ऐसी सोच रखना एक कल्पना ही लग सकती है, जब इस देश में अंग प्रत्यारोपण के चलते किसी भी व्यक्ति को अपना जीवन न खोना पड़े लेकिन यह एक अच्छे समय में ही संभव है।

यह कहा जाना जरूरी है कि यहां व्यवस्था और नेटवर्क की मौजूदगी के साथ लाखों लोगों के दिलों में परोपकारिता आज भी जीवित है। जो किया जाना है वो है व्यवस्था का बेहतरी के साथ काम किया जाना और जरूरी कामों को परिणाम तक ले जाना। एक बेहतर दिन की संभावना और आशा को कभी खत्म नहीं होना चाहिए। ❑

(लेखिका पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन में स्वास्थ्य संचार की प्रोफेसर हैं। वह स्वास्थ्य संचार तथा एडवोकेसी की विशेषज्ञ हैं और एडवोकेसी, सहमति निर्माण, क्षमता निर्माण, नीति विश्लेषण, शोध तथा लेखन की भूमिकाओं में सामुदायिक कार्यकर्ता तथा पेशेवर के तौर पर बहुविध क्षमताओं में कार्य कर चुकी हैं। ''नो प्लेस टू गोः स्टोरीज ऑफ होप एंड डिस्अपीयर फ्रॉम इंडियाज़ एलिंग सेक्टर'' उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। ई-मेलः subhadra.menon@phfi.org)

उम्मीदवारों की बहुलता और भारतीय चुनाव सुधार

कौशिक भट्टाचार्य

हाल के लोकसभा चुनाव में छत्तीसगढ़ का महासमुंद लोकसभा क्षेत्र सुर्खियों में रहा। कारण कांग्रेस के अजीत जोगी के ख़िलाफ़ भाजपा ने चंदूलाल साहू को अपना उम्मीदवार बनाया था लेकिन नामांकन प्रक्रिया पूरी होने के बाद पता चला कि वहां से 11 'चंदूलाल' मैदान में थे और इनमें से कुछ तो 'चंदूलाल साहू' भी थे। ऐसा पहली बार नहीं हुआ। अतीत में कुछ लोकसभा क्षेत्रों में 100 से अधिक उम्मीदवार मैदान में रहे और तमिलनाडु में एक विधान सभा क्षेत्र तो 1,000 से अधिक उम्मीदवारों की उम्मीदवारी का भी गवाह रहा है

16वीं लोकसभा के लिए चुनाव प्रक्रिया पूरी हो चुकी है और नयी सरकार की ताजपोशी भी हो चुकी है। ऐसे में चुनावों का नियमित संचालन और इनमें प्राय: सत्ताधारी दल/दलों की हार स्वातंत्र्योत्तर भारत की बड़ी उपलब्धि है। इन व्यापक, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों ने भारतीय लोकतंत्र की विश्वसनीयता इसके नागरिकों के बीच स्थापित की है और पूरे विश्व में इसकी विश्वसनीयता मज़बूत होती जा रही है। कई अन्य देश स्वाभाविक रूप से अपने लोकतंत्र को मज़बूत करना चाह रहे हैं और ऐसे में भारतीय निर्वाचन आयोग तथा इसका कार्यसंचालन सुनिश्चित करने वाला वैधानिक ढांचा एक तरह से मील का पत्थर बन चुका है।

चुनावों में बहुत कुछ दांव पर लगाया जाता है और सभी राजनीतिक दल तथा समूह इस सच से वाकिफ़ हैं। भारत में जिस संस्थागत ढांचे के तहत चुनाव कराये जाते हैं वे मज़बूत मालूम पड़ते हैं लेकिन इनमें सुधार की स्पष्ट गुंजाइश है। जैसे-जैसे बाहरी वातावरण में बदलाव होगा, वैसे ही अप्रिय व आपराधिक घटनाओं के ग्राफ में भी बदलाव आएगा। इसे और भी प्रभावी बनाने के लिए नियामक प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो इन घटनाओं के घटित होने से पहले ही इन पर अंकुश लगा सके। लगातार निगरानी और सुधारों से ही ऐसा संभव है।

यह आलेख न तो भारत में चुनाव सुधारों का सार संक्षेप है और न ही कोई आलोचनात्मक समीक्षा है। कई विशषज्ञों और विशेषज्ञ समूहों ने इस विषय में अपना योगदान किया है जिसके परिणामस्वरूप इस विषय पर व्यापक अकादमिक साहित्य उपलब्ध हो गया है। इन कमज़ोरियों तथा इनके समाधानों का सारांश भारत में चुनाव सुधारों पर प्रस्तुत पार्श्व पत्रक (बैकग्राउंडर) में उपलब्ध है। किसी भी लोकतंत्र में सुधारक कदमों पर खुली बहस होनी चाहिए और ऐसी प्रथाओं पर केंद्रित पार्श्व पत्रक भी सार्वजनिक रूप से उपलब्ध है।

आलेख में भारतीय चुनाव प्रक्रिया के उस एक पहलू पर प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है जिसकी चर्चा आम तौर पर अपेक्षाकृत कम ही की जाती है। हम देखते हैं कि 2009 की तुलना में 2014 के लोकसभा चुनावों में उम्मीदवारों की संख्या में मामूली बढ़ोतरी हुई है। यह संख्या 2009 में 8,069 थी जो 2014 में 8,251 हो गयी है। हालांकि भारत का चुनाव इतिहास इस बात का संदेश दे रहा है कि यदि जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में बदलाव नहीं किये गए तो भविष्य में उम्मीदवारों की संख्या लगातार बढ़ती ही जाएगी। ऐसे भी संकेत मिले हैं कि यदि व्यापक रोकथाम नहीं हुआ तो आने वाले समय में अधिकांश लोकसभा क्षेत्रों में 16 से ज्यादा उम्मीदवार होंगे जिससे चुनाव प्रबंधन में काफी समस्याएं आएंगी। एक निर्वाचन क्षेत्र में 16 से अधिक उम्मीदवार होने का मतलब है कि न सिर्फ निर्वाची प्राधिकारों के लिए नियामक दायित्व बढ़ जाएंगे बल्कि संचालन के स्तर पर भी इन क्षेत्रों में सभी मतदान केंद्रों पर एक से अधिक इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) की जरूरत रहेगी।

भारत की चुनाव सांख्यिकी हमारे दावों को मज़बूत करती है। 1980 के बाद से कई लोकसभा क्षेत्रों में उम्मीदवारों की कुल संख्या 50 से अधिक रही है और कुछ मामलों में तो यह आंकड़ा 100 के पार चला गया है। उम्मीदवारों का आंकड़ा 1996 में चरम पर

था। उस वर्ष आंध्र प्रदेश के नालगोंडा और कर्नाटक के बेलगाम से क्रमशः 480 और 456 उम्मीदवार मैदान में थे। तमिलनाडु विधानसभा चुनाव में तो मोदाकुरिची विधानसभा क्षेत्र से 1,033 उम्मीदवार चुनाव में थे। इन सभी मामलों में चुनाव आयोग को मजबूरन मतपत्रों की जगह पूरी बुकलेट छापनी पड़ी थी। इसके बाद कुछ समय के लिए नीतिगत हस्तक्षेपों ने सकारात्मक परिणाम दिया लेकिन 2009 में फिर से 70 प्रतिशत से ज्यादा लोकसभा क्षेत्रों में कम से कम 10 उम्मीदवार थे। इनमें से ज्यादातर या तो निर्दलीय थे या ऐसे छोटे दलों से संबद्ध थे जिनका केवल स्थानीय स्तर पर अस्तित्व था।

राजनीति विज्ञानियों के बीच इस बात को लेकर बहस जारी है कि चुनावों में अधिक उम्मीदवारों का प्रवेश रोकने के उपायों से कुछ फायदा मिल भी पाएगा या नहीं। प्रतिबंधों के समर्थकों के तर्क प्रायः चुनावों की प्रबंधनीयता पर आधारित होते हैं। वे इस बात पर जोर देते हैं कि असीमित प्रविष्टियों के कारण इनसे संबंधित ख़र्च बहुत बढ़ जाता है और साथ ही उनका यह भी तर्क़ है कि अगर इस प्रवृत्ति पर रोक नहीं लगायी गयी तो यह चुनाव प्रक्रिया की पवित्रता को ही धूमिल कर देगा। हालांकि बहुत से राजनीति विज्ञानी इस विचार को लेकर सहज नहीं हैं। उनका कहना है कि हाशिये पर के उम्मीदवारों के प्रभाव का आकलन केवल उनकी चुनावी सफलता के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। वे लोग जिन मुद्दों को उठाते हैं और जिनके लिए संघर्ष करते हैं, कई बार वे मुद्दे चुनावी बहस का रुख बदल देते हैं और सत्ताधारियों के व्यवहार में भी बदलाव ला देते हैं। इस मत का मानना है कि चुनावी प्रविष्टि पर कृत्रिम प्रतिबंध असहमति के स्वर को मंद कर देता है और विचारों की अनेकता, जो किसी भी लोकतंत्र का अत्यावश्यक तत्व है, केवल प्रबंधनीयता की क़ीमत पर पीछे छूट जाती है। कुछ अन्य राजनीति विज्ञानियों का मानना है कि चुनाव में भागीदारी पर कृत्रिम प्रतिबंध के प्रयास कभी सफल नहीं हुए हैं और सामान्य तौर पर दीर्धकालिक परिदृश्य में ये उत्पादकता के प्रतिकूल परिणाम देते रहे हैं।

दुर्भाग्यवश पूरी दुनिया में नियामक संस्थाएं कई बार बिना किसी ऐसे सैद्धांतिक ढांचे के ही नीतिगत निर्णय की स्थिति में पहुंचने की कोशिश करती हैं जो ढांचा यह पता लगाने की कोशिश करता हो कि क्यों अचानक बड़ी संख्या में उम्मीदवार मैदान में आने लगे हैं या आ सकते हैं। इस रवैये के एक गैरइरादतन परिणाम के रूप में तथाकथित 'अगंभीर' उम्मीदवारों की प्रविष्टि पर रोक जैसी चरम स्थितियां प्रायः दिखायी देती हैं।

ऐसे 'अगंभीर' उम्मीदवारों की अतिबहुलता को देखते हुए उनकी भागीदारी के पीछे की मंशा की समीक्षा भी आवश्यक है। यद्यपि चुनाव में भागीदारी सत्तारूढ़ राजनेताओं के विरुद्ध विरोध का एक स्वरूप हो सकता है तथापि ज्यादातर मामलों में इस दावेदारी की जड़ें भारतीय राजनीतिक दलों की शातिर और अधिकारवादी प्रकृति में सन्निहित है। शातिर प्रकृति के तहत ही दिग्गज प्रतिद्वंद्वियों का वोट बिखेरने के लिए बड़ी संख्या में उनके हमनाम (क्लोन) व अन्य डमी उम्मीदवार खड़े किये जाते हैं। जब दो या दो से ज्यादा दल ऐसी स्वकेंद्रित चालबाजियों का सहारा लेते हैं तो उस एक निर्वाचन क्षेत्र में उम्मीदवारों की संख्या में खासा इज़ाफ़ा होने की संभावना बन जाती है। इसी तरह अधिकारवाद या थोपी जाने वाली उम्मीदवार चयन प्रक्रिया एक दल के अंदर ही विद्रोही दावेदारों को तैयार कर देती है जिससे उम्मदवारों की संख्या और बढ़ जाती है।

उम्मीदवारों का आंकड़ा 1996 में चरम पर था। उस वर्ष आंध्र प्रदेश के नालगोंडा और कर्नाटक के बेलगाम से क्रमशः 480 और 456 उम्मीदवार मैदान में थे। तमिलनाडु विधानसभा चुनाव में तो मोदाकुरिची विधानसभा क्षेत्र से 1033 उम्मीदवार चुनाव में थे। इन सभी मामलों में चुनाव आयोग को मज़बूरन मतपत्रों की जगह पूरी बुकलेट छापनी पड़ी थी।

डमी उम्मीदवार उतारने या क्लोनिंग का सबसे रोचक उदाहरण प्रतिद्वंद्वी के नाम से बिल्कुल मिलते-जुलते नाम वाले उम्मीदवार को मैदान में उतारना है। उल्लेखनीय है कि यहां किसी को अनुचित व्यवहार की शंका हो सकती है लेकिन यह साबित करना बेहद मुश्किल होगा कि हमनाम उम्मीदवार क्लोन के तौर पर खड़े किये गए हैं। संभव है कि इनमें से कुछ उम्मीदवार स्वतंत्र दावेदारी भी पेश कर रहे हों। ऐसे मामलों में निर्वाचन प्राधिकारी परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर कोई नतीजा निकाल सकते हैं।

इनमें एक आधार यह हो सकता है कि क्लोन उम्मीदवार आखिरी क्षणों में नामांकन दाखिल करे ताकि प्रतिद्वंद्वियों को प्रतिक्रियात्मक कदम उठाने का अवसर ही न मिले। दूसरा यह कि किसी दिग्गज उम्मीदवार का हमनाम क्लोन उम्मीदवार अपने प्रचार-प्रसार पर शायद ही ज्यादा समय दे क्योंकि उसके मुखर होते ही मतदाताओं को उसकी वास्तविक उम्मीदवारी का पता चलने लगेगा। इसके विपरीत स्वतंत्र उम्मीदवार हमनाम होने के बावजूद अपने प्रचार में पूरी ताकत झोंकेगा क्योंकि उसे चुनाव से और कोई अतिरिक्त फायदा नहीं मिलने वाला है। हालांकि, स्वतंत्र उम्मीदवारों की वास्तविक मौजूदगी राजनीतिक दलों के बीच व्यापक पैमाने पर क्लोनवार को जन्म दे सकती है।

स्वतंत्र दावेदार हों या फिर क्लोन, विधिसम्मत रूप से इन उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोका नहीं जा सकता है। इस तरह के मामले में सबसे अच्छी नीति सूचना का व्यापक प्रसार ही हो सकती है। आदर्श रूप में निर्वाची प्राधिकारियों को हरेक बूथ पर यह जानकारी प्रदान करनी चाहिए कि उस क्षेत्र में बिल्कुल एक समान या फिर मिलते-जुलते नाम वाले एकाधिक उम्मीदवार मौजूद हैं। यह नीरस-सी कोशिश शिक्षित उम्मीदवारों पर केंद्रित होगी, इस कारण बूथों पर इस आशय की लिखित सूचनाएं या बैनर आदि लगाना ही पर्याप्त होगा।

उम्मीदवारों की बड़ी संख्या और साथ ही तदंतर कदाचार ने लंबे समय से भारतीय निर्वाचन प्राधिकारियों को चिंता में डाल रखा है। निर्वाचन आयोग ने कई बार आशंका जतायी है कि शायद बड़े राजनीतिक दल अपने हितों के लिए बड़ी संख्या में छद्म उम्मीदवारों को उतार रहे हैं। भारतीय विधि आयोग तथा राष्ट्रीय संविधान समीक्षा आयोग द्वारा इस मामले में की गयी पड़तालों के भी ऐसे ही नतीजे सामने आए थे। हाल में, ऐसे मामलों में, जहां कोई प्रमाण मिल पाया है, निर्वाचन आयोग ने डमी उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ कार्रवाई भी शुरू कर दी है। जहां तक नीतियों का मसला है, भारतीय

विधि आयोग ने निर्दलीय उम्मीदवारों के लोकसभा चुनाव में उतरने पर रोक लगाने की अनुशंसा की है। इस संबंध में संविधान समीक्षा आयोग तथा चुनाव आयोग के सुझाव भी ऐसे ही हैं, यहां तक कि कुछ ज्यादा कठोर हैं।

व्यावहारिक तौर पर पूरी दुनिया के लोकतंत्र नामांकन दाखिल करने के स्तर पर उम्मीदवारों की प्रविष्टि रोकने के लिए दो तरह के अप्रत्यक्ष प्रतिबंधों पर मुख्यत: आश्रित हैं- पहला, जमानत राशि जमा कराने के रूप में, एक निश्चित मत प्रतिशत हासिल नहीं होने पर यह राशि जब्त कर ली जाती है, और दूसरा, निर्वाचन क्षेत्र से एक निर्धारित न्यूनतम संख्या में मतदाताओं के समर्थन का दस्तावेजी सबूत जिसे संक्षेप में हस्ताक्षर अनिवार्यता भी कहते हैं। अन्य दूसरे कई लोकतंत्रों की ही तरह भारत में भी ये प्रतिबंध लगाये गए हैं। आम चुनावों के लिए 1951 में जमानत राशि 500 रुपये थी। वर्ष 1996 में उम्मीदवारों की बाढ़ देखते हुए इसे बढ़ाकर 10,000 रुपये किया गया और 2009 में विशेषज्ञ समूह की राय लेकर इसे 25,000 रुपये तक बढ़ा दिया गया।

यहां ध्यान देने की बात है कि महंगाई बढ़ने के साथ-साथ जमानत राशि का मूल्य कम होता जाता है जबकि सामान्य आय में वृद्धि से इसे वहन करना समय के साथ आसान होता चला जाता है। इस तरह 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1990 के दशक की शुरुआत में उम्मीदवारों की भरमार का कारण केवल राजनीतिक अस्थिरता ही नहीं थी बल्कि उस समय चुनाव लड़ने वालों के लिए इसके बदले में मामूली रकम अदा करनी पड़ती थी। चुनावी आंकड़े बताते हैं कि 1996 के बाद जमानत राशि में की गयी बढ़ोतरी ने थोड़े समय के लिए भारत में उम्मीदवारों की संख्या पर उल्लेखनीय प्रभाव डाला। माना जा रहा है कि 2009 में इस संबंध में किया गया बदलाव भी ऐसा ही प्रभाव डालेगा। हालांकि ज्यादा प्रभावी होने के लिए जमानत राशि में वृद्धि की ज़रूरत है। निर्वाचन आयोग इस तथ्य से पूरी तरह वाकिफ है और उसने अपने प्रस्ताव में मांग की है कि उसे हर चुनाव के पहले जमानत राशि निर्धारित करने का अधि कार प्रदान किया जाए।

दिलचस्प है कि भारत में जमानत राशि का मौजूदा स्तर अंतर्राष्ट्रीय स्तर की तुलना में काफी ज्यादा है। भारत में आवश्यक जमानत राशि मौजूदा मूल्यों के आधार पर इसके प्रति व्यक्ति वार्षिक आय का एक तिहाई है जबकि ब्रिटेन, कनाडा और और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में यह प्रतिव्यक्ति आय का महज दो प्रतिशत से भी कम है। इससे भी बड़ी चिंता की बात यह है कि भारत में जमानत राशि की रकम निकट भविष्य में मोटी बने रहने की उम्मीद है और इस स्थिति में वास्तविक रूप से वंचित रहे समुदायों (यूं कहें कि स्थानीय जनजातीय समुदायों) को राजनीतिक भागीदारी से वंचित रखकर राजनीति में भेदभाव शुरू हो सकता है।

दुर्भाग्यवश हस्ताक्षर अनिवार्यता की नीति को भारत में उस पैमाने पर लागू नहीं किया जा सका है जैसा कि जमानत नीति के साथ हुआ है। केवल 10 मतदाताओं के हस्ताक्षर की अनिवार्यता कोई भी उम्मीदवार बेहद आसानी से सिर्फ अपने पारिवारिक सदस्यों या नज़दीकी मित्रों की मदद से पूरी कर सकता है। साथ ही, यह भी दिलचस्प है कि भारत में लोकसभा क्षेत्र के कुल मतदाताओं और हस्ताक्षर अनिवार्यता के लिए आवश्यक हस्ताक्षरों का अनुपात अंतर्राष्ट्रीय स्तर के मुक़ाबले बेहद कम है। हस्ताक्षर अनिवार्यता की सीमा में वृद्धि (कम से कम ऑस्ट्रेलिया के बराबर जहां न्यूनतम 50 हस्ताक्षर जरूरी हैं)। सतत रूप में चुनाव आयोजन के खर्च में कोई बढ़ोतरी नहीं करने वाला है।

1980 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1990 के दशक की शुरुआत में उम्मीदवारों की भरमार का कारण केवल राजनीतिक अस्थिरता ही नहीं थी बल्कि यह भी था कि उस समय चुनाव लड़ने वालों के लिए इसके एवज में मामूली आर्थिक मूल्य अदा करना था। चुनावी आंकड़े बताते हैं कि 1996 के बाद जमानत राशि में की गयी बढ़ोतरी ने थोड़े समय के लिए भारत में उम्मीदवारों की संख्या पर उल्लेखनीय प्रभाव डाला।

अमरीकी अनुभव दिलचस्प रूप से संकेत दे रहे हैं कि हस्ताक्षर अनिवार्यता पर स्थानीय रुख अपनाकर भी उम्मीदवारों की संख्या सीमित की जा सकती है। उदाहरण के लिए अगर किसी निर्वाचन क्षेत्र में उम्मीदवारों की न्यूनतम संख्या (माना कि 30) की सीमा पार हो जाती है तो ऐसी स्थिति के लिए निर्वाचन आयोग को यह अधिकार होना चाहिए कि वह (मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों के अलावा अन्य उम्मीदवारों के संदर्भ में) न्यूनतम अनिवार्य हस्ताक्षरों की संख्या (माना कि 100) को एक समुचित संख्या तक बढ़ा सके। चूंकि हस्ताक्षरों का संग्रह और उनके सत्यापन में ज्यादा वक्त लग सकता है, इसलिए उन निर्वाचन क्षेत्रों में उम्मीदवारों को समर्थन-पत्र प्रस्तुत करने के लिए अतिरिक्त (माना कि 7 दिन) समय दिया जा सकता है और ऐसा नहीं होने पर उम्मीदवारी रद्द की जा सकती है। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में चुनाव प्रक्रिया को पुनर्निर्धारित किये जाने की ज़रूरत होगी।

भारत में अब तक हस्ताक्षर अनिवार्यता को लेकर बहुत ज्यादा प्रयोग नहीं किये गए हैं जबकि जमानत प्रणाली के विपरीत हस्ताक्षर अनिवार्यता लोकतंत्र की मूल भावना के अधिक सापेक्ष है और यह निर्धन से भेदभाव नहीं करती है। निश्चित रूप से इस व्यवस्था को मज़बूत करने के लिए जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में बदलाव की ज़रूरत होगी।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या इस तरह का कोई बदलाव हो सकता है? कई बार भारत के राजनीतिक दल यह महसूस करते हैं कि उनकी चालाकियां न केवल उनके विरोधियों का नुक़सान पहुंचाती हैं बल्कि खुद उनका भी नुक़सान करती हैं। अतीत में ये दल दल-बदल विरोधी कानून पारित कराने के लिए एकजुट हुए थे तो इसका कारण था कि उनके अपने हितों की रक्षा के लिए ऐसा करना उनके लिए जरूरी हो गया था। इस बात की केवल उम्मीद की जा सकती है कि वे दोबारा भी इतने ही संवेदनशील होंगे। ❑

(लेखक भारतीय प्रबंधन संस्थान, लखनऊ में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। वह 10 वर्ष से ज्यादा समय तक भारतीय रिज़र्व बैंक के सांख्यिकी तथा मौद्रिक नीति विभागों में काम कर चुके हैं। वह बैंक फॉर इंटरनेशनल सैटलमेंट में अतिथि शोध कर्ता भी रहे हैं। चुनाव अध्ययन, खासकर चुनाव में उम्मीदवारों की बहुलता तथा चुनाव विनियमन पर इनके प्रभाव, राजनीतिक दल प्रणाली और लोकतंत्र आदि इन दिनों उनके शोध के विषय हैं। ई-मेल : kbhattacharya@iiml.ac.in)

CAREER LAUNCHER

सिविल सेवा अभ्यर्थियों

CL Civil Services Notice No. 2014-15 June 2014

सामान्य अध्ययन एवं सीसैट 2015 बैच के लिए प्रवेश प्रारंभ

सामान्य अध्ययन (प्रारंभिक + प्रधान परीक्षा)

हिंदी माध्यम

इतिहास
वारिस सिद्दीकी (GS Anchor)

अर्थव्यवस्था
प्रतीक गुप्ता

भूगोल
प्रमोद शर्मा

राजव्यवस्था और शासन प्रणाली
एस. रंजन

नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा और अभिरुचि
संजीव कुमार एवं एस. रंजन

Compulsory English Paper course सहित
Other Prominent Experts

Essay writing+ Interview Guidance सहित

सामान्य अध्ययन @ ₹**25,000**
पहले 300 विद्यार्थियों के लिए मान्य

सामान्य अध्ययन+सीसैट (संयुक्त कार्यक्रम) @ ₹**40,000**

10 जुलाई से बैच प्रारंभ
मुखर्जी नगरः 10:00 पूर्वाह्न

CSAT की तैयारी

हमारा CSAT कार्यक्रम, छात्रों को सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा के लिए 250+ घंटों की कक्षाओं, व्यापक अध्ययन सामग्री और अखिल भारतीय टेस्ट सीरिज़ द्वारा प्रतियोगी श्रेष्ठता प्रदान करने के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया है।

सीसैट 2015 के लिए हिंदी एवं अंग्रेज़ी माध्यम में नए बैच जुलाई 2014 से प्रारंभ

CL के **742*** छात्र, सिविल सेवा प्रधान परीक्षा 2013 के लिए योग्य पाये गये।

CL के **176*** छात्र सिविल सेवा परीक्षा 2013 के व्यक्तित्व परीक्षण/साक्षात्कार के योग्य पाये गये।

*अंतिम परिणामों पर आधारित

CL | Civil Services Test Prep

www.careerlauncher.com/civils

/CLRocks

नये बैचों की जानकारी हेतु अपने निकटतम् CL सिविल केंद्र से संपर्क करें

मुखर्जी नगरः 204/216, द्वितीय तल, विराट भवन/एमटीएनएल बिल्डिंग, पोस्ट ऑफिस के सामने, फोन – 41415241/46
ओल्ड राजेन्द्र नगरः 18/1, प्रथम तल, अग्रवाल स्वीट कॉर्नर के सामने, फोन – 42375128/29
बेर सरायः 61बी, ओल्ड जे. एन. यू. कैम्पस के सामने, जवाहर बुक डिपो के पीछे, फोन – 26566616/17
साउथ कैम्पसः 283, प्रथम तल, वेंकेटेश्वरा कॉलेज के सामने, सत्या निकेतन, फोन – 24103121/39

अहमदाबादः 9879111881 | इलाहाबादः (0)9956130010 | बंगलुरूः 41505590 | भोपालः 4093447 | भुवनेश्वरः 2542322 | चंडीगढ़ः 4000666 | चेन्नईः 28154725
हैदराबादः 66254100 | इन्दौरः 4244300 | जयपुरः 4054623 | लखनऊः 4108009 | नागपुरः 6464666 | पटनाः 2678155 | पुणेः 32502168

YH - 83/2014

चुनाव सुधार पर खामोशी क्यों?

उर्मिलेश

आर्थिक सुधारों की दिशा को लेकर लगभग सभी दलों के रहनुमाओं में सहमति दिखती है लेकिन वे ही रहनुमा अपने चयन की प्रक्रिया में सुधार की बात आने पर खामोशी में चले जाते हैं या इसके विपरीत बात करने लगते हैं, आखिर यह विरोधाभास क्यों? एक मज़बूत जनतंत्र के लिए ज़्यादा जरूरी क्या है

सन् 1991-92 के बाद से ही हमारे राष्ट्रीय विमर्श में यह बात बहुत भरोसे से कही जाती है कि देश में आर्थिक सुधारों को लेकर राष्ट्रीय सहमति है। आश्चर्य की बात है कि राजनीतिक-प्रशासनिक सुधारों, खासतौर पर चुनाव सुधारों के बारे में यही बात भरोसे के साथ नहीं कही जाती। क्या अपने देश में लोग बड़े पैमाने पर चुनाव सुधार नहीं चाहते। सच यह है कि देश में अगर चुनाव सुधारों को लेकर रायशुमारी कराई जाए तो उसके पक्ष में भारी मतदान होगा। उतना समर्थन शायद ही आर्थिक सुधारों को मिले! पर हमारे सियासतदान और बड़े पदों पर बैठे लोग लोकतंत्र के इस बड़े एजेंडे को उठाने में वैसी तत्परता नहीं दिखाते, जैसी वे आर्थिक सुधार के मुद्दों को उठाने में दिखाते हैं। हाल के वर्षों में निर्वाचन आयोग, न्यायविदों, समाजशास्त्रियों और सिविल सोसायटी की तरफ से चुनाव सुधार के कई महत्वपूर्ण सुझाव आए पर कानून बनाने और बदलने वाले लोगों की तरफ से कोई बड़ी पहल सामने नहीं आई।

पिछली सरकार ने राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों की चुनाव-फंडिंग के बारे में निर्वाचन आयोग द्वारा पेश कुछ प्रस्तावों-सुझावों को जिस तरह आनन-फानन में खारिज किया या कुछेक को ठंडे बस्ते में डाला उससे सरकार की लोकतांत्रिक प्रतिबद्धता पर गंभीर सवाल उठते हैं। बीते कुछ सालों के अनुभवों की रोशनी में आमतौर पर देश का हर तबका मानता है कि जिन कुछ संवैधानिक निकायों ने हमारे लोकतंत्र को जीवंत और जनपक्षी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है उनमें निर्वाचन आयोग सबसे उल्लेखनीय है। इस आयोग ने अपने कामकाज और अनुभवों से सबक लेते हुए पिछले दिनों एक प्रस्ताव दिया कि राजनीतिक दलों की चुनाव-फंडिंग की मौजूदा नियमावली में कुछ जरूरी संशोधन होने चाहिए। जनप्रतिनिधित्व कानून से संबद्ध अनुच्छेद के खास पैरे (29 सी) में बदलाव के जरिये इसे पुख्ता किया जा सकता है। आयोग का कहना है कि पार्टियों को दिए जा रहे चंदे या सहयोग की राशि अगर 20 हज़ार से कम भी है तो उसका पूरा ब्योरा दर्ज कराया जाना चाहिए। यह बताया जाना चाहिए कि उक्त राशि को देने वाले कौन लोग हैं। उनके पैन नंबर आदि का इसमें उल्लेख किया जाना चाहिए। अभी तक पार्टियों के चुनाव-फंड में योगदान करने वाले सिर्फ़ उन्हीं चंदा-दाताओं या सहयोग-दाताओं का ब्योरा दर्ज़ होता है, जो चेक द्वारा 20 हज़ार रुपये से ज्यादा का चंदा या सहयोग देते हैं। आयोग ने पिछले कुछ वर्षों के अपने अनुभवों की रोशनी में पाया कि इस प्रावधान का भारी पैमाने पर दुरुपयोग हो रहा है। कई बार लाखों-करोड़ों की फंडिंग 20 हज़ार से नीचे की कई किस्तों में कर दी जाती है। ऐसे सहयोग-दाताओं का पता तक नहीं चलता और पार्टियां मालामाल हो जाती हैं। एक भरोसमंद आकलन के मुताबिक देश के राजनीतिक दलों को मिलने वाली कुल राशि के 75 फीसदी हिस्से से ज्यादा के स्रोत का कोई अता-पता नहीं होता। पार्टियां साफ नहीं करती कि यह राशि उन्हें कहां से मिली है? प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को हरेक वर्ष करोड़ों की रकम चंदे या सहयोग के नाम पर मिलती है। पर इसमें बड़ी रकम का स्रोत अज्ञात होता है। एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) शोध-रिपोर्ट के मुताबिक राजनीतिक दलों को कारपोरेट घरानों से मिलने वाली कुल राशि का 87 फीसदी हिस्सा देश

के दो प्रमुख राजनीतिक दलों को जाता है। एडीआर रिपोर्ट के मुताबिक सन 2004-2012 के बीच राजनीतिक दलों की कुल आय 4895.96 करोड़ दर्ज थी लेकिन वैध चुनावी ट्रस्टों और अन्य ज्ञात स्रोतों से उन्हें मात्र 10 से 16 फीसदी रकम मिली। अज्ञात स्रोतों से मिलने वाली राशि का हिस्सा 75 फीसदी से कुछ ज्यादा आंका गया। इस अवधि में कांग्रेस और भाजपा जैसे बड़े दलों को अज्ञात स्रोतों से मिलने वाली राशि कुल आय का 73 फीसदी से ऊपर थी। अज्ञात स्रोतों से राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी को सबसे ज्यादा राशि मिली बताई गई है। यह राशि 91.58 फीसदी है। सीपीआई को कुल 14.7 फीसदी रकम अज्ञात स्रोतों से मिली बताई गई है। पार्टियों द्वारा कैश में चंदा या सहयोग लेना आम बात है। इसके हिसाब-क़िताब में पारदर्शिता कैसे संभव है?

यह आंकड़े सन 2004-12 के बीच के हैं। इन आकड़ों में फेरबदल हुआ है और दलों की हिस्सेदारी का स्वरूप और अज्ञात स्रोतों से मिलने वाली रकम की मात्रा अब और बढ़ गई बताई जा रही है। भारतीय चुनाव प्रक्रिया और हमारे लोकतांत्रिक ढांचे का यह बड़ा अंधा कुआं है। कहीं न कहीं यह अंधा कुआं हमारे चुनावों की लोकतांत्रिकता और निष्पक्षता को निगल रहा है। इससे चुनाव-प्रक्रिया की स्वतंत्रता और पारदर्शिता प्रभावित हो रही है। निर्वाचन आयोग ने इस बाबत ठोस कानूनी प्रावधान की बार-बार वकालत की है। पर आई-गई तमाम सरकारों और देश के प्रमुख राजनीतिक दलों, यहां तक कि नौकरशाही की तरफ से भी इस बारे में संजीदा होकर विचार-विमर्श करने और फ़ैसला लेने की सदाशयता नहीं दिखाई गई। आयोग ने सर्वदलीय बैठकों में भी इस बाबत विचार किया। पर प्रमुख राजनीतिक दलों की तरफ से भी निर्वाचन आयोग को इस मामले में कोई खास सहयोग या समर्थन नहीं मिला।

आज के संदर्भ में चुनाव सुधार के लिए सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न है - कारपोरेट फंडिंग पर सुसंगत निर्णय के लिए किस तरह की पहल हो। नयी पहल के लिए राजनीतिक दलों की सहमति कैसे ली जाय? विकसित देशों, खासकर अमरीका और कुछ अन्य यूरोपीय देशों में कारपोरेट फंडिंग के दुष्परिणाम पूरी दुनिया ने देखे हैं लेकिन भारत जैसे विकासशील और विविधता से भरे देश में कारपोरेट फंडिंग पर नियंत्रण के लिए समय रहते कारगर कदम नहीं उठाए गए तो भारतीय जनतंत्र में 'जन' की आवाज़ खत्म हो जाएगी और तंत्र पर सिर्फ़ कुछ ताक़तवर कारपोरेट घरानों और कुछ असरदार सियासतदानों का कब्ज़ा होगा।

पिछले दिनों चुनाव-सुधार की जरूरत को रेखांकित करता एक और मामला सामने आया। यह किसी प्रत्याशी के ख़र्च के ब्यौरे की छानबीन करने और उस पर फ़ैसला लेने के निर्वाचन आयोग के अधिकार-क्षेत्र का मामला है। यूपीए-2 सरकार ने इस मुद्दे पर आयोग की तरफ से दी जा रही दलील को नामंजूर कर दिया। सरकार के इस फ़ैसले के बाद तय हो गया कि किसी प्रत्याशी से उसके चुनाव ख़र्च के जमा किए ब्योरे की छानबीन या उससे सफाई मांगने का आयोग को अधिकार नहीं होना चाहिए। यानी, प्रत्याशी ने जो ब्योरा दिया, उसे यथातथ्य मंजूर किया जाना चाहिए।

सबसे बड़ा सवाल है, देश में उम्मीदवारों के चुनाव-खर्च की सीमा तय है लेकिन राजनीतिक दलों के लिए कोई सीमा नहीं है, ऐसा क्यों? सबसे पहले तो राजनीतिक दलों के ख़र्च की सीमा बांधी जानी चाहिए। राष्ट्रीय दलों के लिए अलग और क्षेत्रीय दलों के लिए अलग। उम्मीदवारों की संख्या के हिसाब से दलीय-खर्च की सीमा में मामूली बदलाव भी किया जा सकता है। पर कुछ न कुछ तो होना चाहिए। आखिर पार्टियों के चुनाव-प्रचार ख़र्च की सीमा क्यों न बांधी जाए?

इसका मतलब साफ है कि सरकार चुनाव-फंड के दुरुपयोग या आर्थिक कदाचार के मामले में निर्वाचन आयोग को किसी भी प्रत्याशी या दल के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने का अधिकार नहीं देना चाहती। ताज़ा मामला महाराष्ट्र के एक पूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री का है। जिसके चलते केंद्र सरकार ने निर्वाचन आयोग के ख़िलाफ़ अपने इस तरह के विवादास्पद मंतव्य को सूत्रबद्ध किया। उक्त नेता के ख़िलाफ़ कोर्ट में मामला लंबित है। निर्वाचन आयोग ने उनके चुनाव-खर्च के कथित गोलमाल की ब्योरेवार जांच की, जिसे उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी है लेकिन केंद्र सरकार संवैधानिक संस्था निर्वाचन आयोग के तर्क के पक्ष में उतरने की बजाय उक्त नेता के बचाव में उतर आई। शायद सरकार भूल गई या भुलाना चाहती है कि सर्वोच्च न्यायालय ने दशक पहले एक मामले में अपनी राय सुनाई थी कि किसी प्रत्याशी के चुनाव-ख़र्च के ब्योरे में गड़बड़ी पाए जाने पर उसका चुनाव अवैध या उसे भविष्य के लिए अयोग्य घोषित करने का अधिकार निर्वाचन आयोग को है। मीडिया में 'पेड न्यूज' जैसी विकृति के ख़िलाफ़ सरकार या आयोग कुछ ठोस फ़ैसला नहीं ले पा रही हैं कि उन्हें इस समस्या से कैसे निपटना है। यह समझ में नहीं आता कि कारपोरेट और बड़ी देसी-विदेशी कंपनियों के पक्षधर ताबड़तोड़ आर्थिक सुधारों के लिए बेचैन रहने वाले हमारे सत्ताधारी नेता (चाहे वे जिस दल के हों) राजनीतिक-तंत्र, खासतौर पर चुनाव-तंत्र में सुधार के सवाल पर इतने अनुदार क्यों हो जाते हैं।

चुनाव सुधार के कई बड़े सुझाव सरकार के समक्ष लंबित हैं। पर मेरी नज़र में सबसे ज़रूरी कदम राजनीतिक दलों की फंडिंग और उनके चुनावी ख़र्च के मौजूदा नियम में तब्दीली से जुड़ा हुआ है। क्या नई सरकार इस बारे में पिछली सरकार के नक्शेकदम को ठुकराते हुए नया रास्ता अपनाएगी।

सबसे बड़ा सवाल यह है कि देश में उम्मीदवारों के चुनाव-खर्च की सीमा तय है लेकिन राजनीतिक दलों के लिए कोई सीमा नहीं है। ऐसा क्यों? सबसे पहले तो राजनीतिक दलों के ख़र्चों की सीमा बांधी जानी चाहिए। राष्ट्रीय दलों के लिए अलग और क्षेत्रीय दलों के लिए अलग। उम्मीदवारों की संख्या के हिसाब से दलीय-खर्च की सीमा में मामूली बदलाव भी किया जा सकता है। पर कुछ न कुछ तो होना चाहिए। आखिर पार्टियों के चुनाव-प्रचार ख़र्च की सीमा क्यों न बांधी जाए? बीते दो दशक के चुनावों का आकलन किया जाए तो पाएंगे कि देश में चुनाव के दौरान होने वाले बेतहाशा ख़र्च, उसमें कारपोरेट फंडिंग और कालाधन के इस्तेमाल जैसी विकृतियों का लगातार विस्तार हुआ है। यह सब सिर्फ़ इसलिए हुआ कि अपने देश में राजनीतिक दलों के चुनाव प्रचार ख़र्च पर अंकुश या नियमन के लिए कोई वैधानिक प्रावधान ही नहीं हैं। निर्वाचन आयोग सिर्फ़ उम्मीदवारों के ख़र्च पर नज़र रख सकता है, पार्टियों के ख़र्च पर नहीं।

हमारी चुनाव प्रक्रिया में आई विकृतियों का समय रहते निराकरण न होने से भी राजनीति में विचारहीनता बढ़ी है। धनशक्ति

और बाहुशक्ति के दबाव में राजनीतिक सोच और राजनीतिक कार्यकर्ताओं की हैसियत गिरी है। आर्थिक सुधारों के दौर में धनार्जन करके एक नया वर्ग भी राजनीति में उतरा है। पुराने बाहुबलियों के साथ इन नये धनपतियों की जुगलबंदी राजनीति का व्याकरण बदल रही है। ज्यादातर राजनीतिक दलों ने चुनाव में धन और बाहुबल को टिकट दिए जाने का आधार बना लिया है वरना दलित-एजेंडे पर आधारित होने का दावा करने वाली एक प्रमुख राजनीतिक पार्टी दिल्ली में एक 'अरबपति प्रापर्टी डीलर' को टिकट क्यों देती और समाजवादी धारा की विरासत संभालने का दावा करने वाली एक अन्य प्रमुख पार्टी आपराधिक प्रवृत्ति के किसी 'राजा' को अपना खासमखास क्यों बनाती? धन और बाहुबल के प्रभामंडल में आम राजनीतिक कार्यकर्ता मारा गया है। राजनेताओं के लिए उससे ज्यादा ज़रूरी आज बाहुबली और मुद्राबली नामक प्रजातियां हो गई हैं। राजनीतिक मूल्यों की पतनोन्मुखता पर अंकुश लगाया जा सकता था, अगर आर्थिक सुधारों के साथ राजनीतिक, खासकर चुनाव सुधारों पर ध्यान दिया गया होता। पर वह नहीं हुआ। इससे हमारे लोकतांत्रिक ढांचे में विकृतियां लगातार बढ़ती रही। इसका असर पार्टियों के अंदरूनी तंत्र और चुनाव प्रक्रिया में भी दिखा। इन सभी कारकों ने भ्रष्टाचार को 'अस्तित्व-रक्षा और प्रभाव-विस्तार का जरूरी आचार' बना दिया। समावेशी विकास के अभाव और निवेश, उत्पादकता व रोज़गार का अनुकूल माहौल न होने से भी लोगों में छीनाझपटी, दलाली और लूट में हिस्सेदारी की लत बढ़ी। इन विकृतियों से निपटने के लिए आज बड़े राजनीतिक-प्रशासनिक सुधार, खासकर चुनावी-सुधारों की ज़रूरत है। कोई भी बड़ा सुधार समाज में अचानक नहीं आ जाएगा। अच्छी बात है कि नई प्रौद्योगिकी और औद्योगीकरण से भी समाज के सोच में सकारात्मक बदलाव आ रहा है। युवा पीढ़ी का एक बड़ा वर्ग नये ढंग से सोचता नज़र आ रहा है। पर बड़े राजनीतिक सुधार के लिए बड़ी राजनीतिक पहलकदमियों की ज़रूरत है। इसके लिए सत्ता-राजनीति (पक्ष-विपक्ष दोनों) के बड़े किरदारों को आगे आना होगा। जब तक चुनाव सुधार के लिए बड़े कदम नहीं उठाए जाते और मतदान-पैटर्न का समाजशास्त्र नहीं बदलता तब तक सत्ता राजनीति का चाल-चरित्र बदलना आसान नहीं है।

चुनाव सुधार की दिशा में बड़ा मुद्दा है-राजनीतिक दलों के फंड का आधार तय करना और उसकी पारदर्शी ढंग से निगरानी। दिवंगत दिनेश गोस्वामी कमेटी से लेकर इंद्रजीत गुप्ता कमेटी तक चुनाव सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव आए। टी.एन. शेषन और जे.एम. लिंग्दोह से लेकर वाई.एस. कुरैशी जैसे कई यशस्वी मुख्य निर्वाचन आयुक्तों ने भी अपने स्तर पर चुनाव सुधार के लिए ज़रूरी मुद्दों को बहस में लाने की कोशिश की। पर बड़े सुधारों के सुझाव को सरकार और राजनीतिक दलों की तरफ से ज्यादा महत्व नहीं मिला। ऐसे में सिर्फ़ जन-दबाव और न्यायिक पहल ही सार्थक विकल्प नज़र आते हैं। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार और राजनीतिक टिप्पणीकार हैं। *नवभारत टाइम्स* और *हिन्दुस्तान* में लंबे समय तक काम कर चुके हैं। बिहार का सच, कश्मीर: विरासत और सियासत, आर्थिक सुधारों के दो दशक (सं.), और झेलम किनारे दहकते चिनार, उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं। वह राज्यसभा टीवी के कार्यकारी संपादक भी रह चुके हैं। लेख में शामिल विचार लेखक के निजी विचार हैं। ई-मेल : urmilesh218@gmail.com)

क्रॉनिकल
आईएएस एकेडमी
हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम में
आईएएस 2015
सा. अध्ययन
फाउंडेशन
प्रारंभिकी सह मुख्य परीक्षा
- पूर्णतः संशोधित 100 प्रतिशत अद्यतन अध्ययन सामग्री
- उत्कृष्ट विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में कक्षाएं
- ऑन लाइन समसामयिकी सामग्री सहयोग
- एक वर्षीय सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल पत्रिका की सदस्यता
- क्रॉनिकल इयर बुक 2014
- क्लासरूम टेस्ट
- असीमित वैयक्तिक शंका समाधान सत्र
- हॉस्टल सुविधा उपलब्ध
प्रारम्भ 17 जुलाई
पंजीकरण जारी
Call: 8800495544, 9953120676
SMS: "CAMPUS YH" to 56677
www.chronicleias.com
नॉर्थ कैंपस (दिल्ली सेन्टर)
2520, हडसन लेन, विजय नगर चौक, दिल्ली-09
(जी.टी.बी मैट्रो स्टेशन के समीप)
सिविल सर्विसेज़ क्रॉनिकल
24 वर्षों से सफलता का मार्गदर्शक
YH - 85/2014

IAS 2015-16

ALS Alternative Learning Systems

Training Steel Pillars For The Nation

The Most Comprehensive Course for General Studies

सामान्य अध्ययन GS EXTENSIVE

मुख्य Paper I, II, III, IV + Essay + प्रारंभिक + CSAT

Alternative Learning Systems ALS 21 YEARS

- **ALS** में **GS हिन्दी माध्यम** 2003 में प्रारंभ किया गया एवं 2005 में हीं हिन्दी माध्यम का सर्वोच्च स्थान **15th Rank** मनोज जैन एवं 2010 में **9th Rank** जय प्रकाश मौर्य ने प्राप्त किया।
- विगत वर्षों में हिन्दी माध्यम से कई अभ्यर्थियों का चयन। साथ ही **ALS** संस्थान से अब तक **1593+** सफल अभ्यर्थियों का चयन, वर्ष 2013 में कुल चयन = **165+**, अब तक **2 IAS TOPPERS** का चयन।
- **एकमात्र संस्थान** जिसके प्रत्येक शिक्षक को 200-400 बैचों को प्रशिक्षण देने का अनुभव प्राप्त है।
- **एकमात्र संस्थान** जिसमें GS समसामयिकी हेतु Competition Wizard प्रकाशन के अनुसंधान एवं विकास (R&D) टीम के सहयोग से उत्कृष्ट एवं अद्यतन अध्ययन सामग्री का निर्माण होता है।

हिन्दी माध्यम में सर्वोच्च परिणाम

Rank 9 — Jai Prakash Maurya — वर्ष 2010 में सर्वोच्च स्थान

Rank 15 — Manoj Jain — वर्ष 2005 में सर्वोच्च स्थान

ALS से अन्य Toppers

Rank 1 — Alok Ranjan

Rank 1 — S. Nagarajan

Rank 2 — Rukmani Riar

सर्वश्रेष्ठ पाठ्यक्रम

सामान्य अध्ययन (300+ सत्र)
GS Main Paper-I, II, III, IV
+
GS प्रारंभिक परीक्षा
+
CSAT (75+ सत्र)
+
निबन्ध (15 कक्षाएँ)
+
साक्षात्कार
+
अंग्रेजी Foundation
+
लेखन कौशल संवर्धन
+
GS मुख्य परीक्षा टेस्ट सीरीज़
(8 टेस्ट)
+
GS प्रारंभिक परीक्षा टेस्ट सीरीज़
(28 टेस्ट)
+
20-Day समसामयिकी क्रैश कोर्स
(प्रारंभिक परीक्षा)
+
20-Day समसामयिकी क्रैश कोर्स
(मुख्य परीक्षा)

Batch Begins

Batch-01 JULY	10	Time: 11:00am
Batch-02 JULY	25	Time: 03:00Pm
Batch-03 SEPT	01	Time: 06:00Pm

सर्वश्रेष्ठ टीम

Stalwarts Combine to form
The Best Ever GS Team

आधुनिक भारत एवं विश्व इतिहास
Hemant Jha
Hemant Jha IAS ACADEMY

भूगोल एवं पर्यावरण
Under the expert guidance of
Shashank Atom

इतिहास एवं भारतीय संस्कृति
Y.D. Misra

संविधान व शासन व्यवस्था
R.C. Sinha, Manish Gautam
New Delhi IAS

आंतरिक सुरक्षा
Manish Gautam

अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे / द्विपक्षीय मुद्दे
Sharad Tripathi

नीतिशास्त्र
K.M. Pathi

भारतीय राजव्यवस्था एवं इतिहास
Manoj Kumar Singh

भारतीय अर्थव्यवस्था
Arunesh Singh

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
Sharad Triapathi & Dr. Sanjay Pandey

CSAT
Arbind Singh, K.M. Pathi, Sachin Arora & Shweta Singh

Programme Director : **MANOJ KUMAR SINGH**
Managing Director: ALS, Interactions IAS Study Circle, Competition Wizard, ISGS

HISTORY
Optional (English & हिन्दी माध्यम)
By
Hemant Jha
Hemant Jha IAS ACADEMY
Batch Begins: July 10

भूगोल
By Shashank Atom, Sachin Arora, Dr. Shashi Shekhar, Soubhik Sen, B.M. Panda & Ajay Srivastava

लोक प्रशासन
R.C. Sinha के निर्देशन में
Batch Begins: July 10

सामान्य अध्ययन "तैयारी कैसे करें"

कार्यशाला-I JULY	08	Time 9am
कार्यशाला-II JULY	15	Time 9am
कार्यशाला-III JULY	22	Time 5pm

आप सादर आमंत्रित हैं।
Venue: ALS, Vardhman Plaza, Nehru Vihar

9891990011
9711990011
9999343999
011-27651110
Visit us at www.iasals.com

Alternative Learning Systems (P) Ltd.
Corporate Office: ALS, B-19, ALS House, Dr Mukherjee Nagar, Delhi-09.
South Delhi Centre: 62/4, Ber Sarai, Delhi-16

ALS Associates
interactions | Competition WIZARD | MiPS EDUCATION | ISGS Indian School of General Studies | careerclassics

Be in touch...
Manoj K Singh
Managing Director, ALS
alsiasindia@gmail.com

YH - 87/2014

चुनाव बनाम अपराधीकरण

आनंद प्रधान

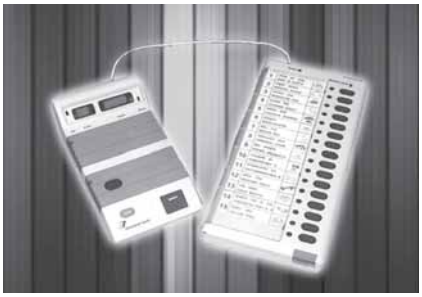

राजनीति के अपराधीकरण को केवल कानूनी या प्रशासनिक प्रावधानों से नहीं रोका जा सकता। इसके लिए सबसे बड़ी पहल राजनीतिक स्तर पर करनी होगी। जिसमें छोटे-बड़े राजनीतिक दलों, सरकार और विपक्ष सभी की महत्वपूर्ण भूमिका है। आखिर राजनीति के अपराधीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत राजनीतिक दलों के स्तर पर ही होती है। ऐसे में, राजनीतिक दलों को यह तय करना होगा कि वे अपराधियों के प्रति शून्य सहनशीलता की नीति अपनाएंगे, दलों में अपराधियों के प्रवेश पर अंकुश लगाने की व्यवस्था करेंगे और खासकर उन्हें चुनाव लड़ने के लिए टिकट नहीं देंगे

भारत में चुनाव सुधारों के लिए राजनीति का बढ़ता अपराधीकरण सबसे बड़ी चुनौती बना हुआ है। राजनीति में अपराधियों के प्रवेश को रोकने और राजनीति को साफ़-सुथरा बनाने की चुनाव आयोग की कोशिशों और उससे ज्यादा सर्वोच्च न्यायालय के सख्त रवैये और फ़ैसलों के बावजूद चिंताजनक तथ्य यह है कि संसद और विधानसभाओं में पहुंचने वाले दागी जन-प्रतिनिधियों की संख्या घटने के बजाय बढ़ती ही जा रही है। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) की एक ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक 2014 के आम चुनावों में चुनकर आई 16वीं लोकसभा के कुल 542 विजयी सांसदों में से 185 सांसदों (34 फीसदी) के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज़ हैं जबकि 15वीं लोकसभा के जिन 521 सांसदों के हलफनामों का अध्ययन किया गया था उनमें 158 सांसदों (30 फीसदी) के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज़ थे।

यही नहीं, एडीआर की रिपोर्ट के अनुसार, 16वीं लोकसभा में कुल 112 सांसदों (21 फीसदी) के ख़िलाफ़ हत्या, हत्या की कोशिश, सांप्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने, अपहरण, महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराध जैसे गंभीर आपराधिक मामले दर्ज हैं। जबकि 15वीं लोकसभा के 521 सांसदों में 77 सांसदों (15 फीसदी) के ख़िलाफ़ गंभीर आपराधिक मामले दर्ज थे। आश्चर्य नहीं कि 16वीं लोकसभा की पहली बैठक में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर हुई बहस का उत्तर देते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने संसद को दागियों से मुक्त करने की अपील की। इसके लिए उन्होंने यह सुझाव भी दिया कि जिन भी सदस्यों के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज़ हैं उसमें न्यायिक प्रक्रिया को तेज़ करने और एक साल के अंदर फ़ैसला करने की ज़रूरत है।

प्रधानमंत्री ने यह भी कहा कि संसद को दागियों से मुक्त कराने के बाद विधानसभाओं और नगर-निगमों को भी अपराधियों से मुक्त कराने की ज़रूरत है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह प्रस्ताव नया नहीं है और राजनीति के बढ़ते अपराधीकरण पर अंकुश लगाने के लिए ऐसे सुझाव विभिन्न मंचों, गैर-सरकारी संगठनों और चुनाव आयोग से लेकर विधि आयोग और द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्टों में प्रमुखता से आते रहे हैं। बावजूद इसके अफसोस की बात यह है कि राजनीति के बढ़ते अपराधीकरण पर कड़ाई से रोक लगाने के लिए ठोस और कारगर पहल करने के मामले में राजनीतिक सहमति बनाने और उसे सख्ती से लागू करने को लेकर राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव के कारण समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है।

असल में, राजनीति के बढ़ते अपराधीकरण की समस्या नई नहीं है, लेकिन चिंता की बात यह है कि स्थिति दिन-ब-दिन बद से बदतर होती जा रही है। इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि राजनीति के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण की दोहरी समस्या से निपटने को लेकर राजनीतिक तंत्र

में वह संकल्प और इच्छाशक्ति नहीं दिखाई देती है जिसके बिना इस चुनौती से निपटना मुमकिन नहीं है। हालांकि पिछले एक-डेढ़ दशक में एडीआर और कॉमनकॉज जैसे गैर-सरकारी संगठनों, चुनाव आयोग और इन सबसे बढ़कर सर्वोच्च न्यायालय की सक्रियता और कई फ़ैसलों के कारण जहां एक ओर राजनीति के अपराधीकरण को रोकने की दिशा में कारगर कदम उठाए गए हैं वहीं राजनीतिक तंत्र पर भी इससे निपटने के लिए ठोस पहल का दबाव बढ़ा है।

यह किसी से छुपा नहीं है कि राजनीतिक तंत्र की हिचकिचाहट के कारण ही यह समस्या इतनी गंभीर हुई है। ऐसा नहीं है कि राजनीतिक तंत्र को इस समस्या की गंभीरता का अंदाज़ा नहीं है। उसे अच्छी तरह मालूम है कि पानी सिर के ऊपर से बह रहा है। सच यह है कि राजनीति के अपराधीकरण पर वोहरा समिति की रिपोर्ट (1993) से लेकर विधि आयोग की 244वीं रिपोर्ट (2014) तक ने कई बार ख़तरे की घंटी बजाई है। यही नहीं, चुनाव आयोग की ओर से चुनाव सुधार हेतु सरकार को भेजे गए विस्तृत प्रस्ताव (2004) से लेकर द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट - 'प्रशासन में नैतिकता' (2008) तक इस ज्वलंत मुद्दे से निपटने को लेकर अनेक सुझाव आए हैं। उन पर सार्वजनिक बहसें हुई हैं और राजनीतिक तौर पर भी यह एक बड़ा मुद्दा बना रहा है।

राजनीतिक सहमति और इच्छाशक्ति के अभाव में राजनीतिक तंत्र अब तक कारगर पहल करने में नाकाम रहा है। इसके कारण सर्वोच्च न्यायालय को बार-बार आगे आना पड़ा है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि पिछले एक-सवा दशक में सर्वोच्च न्यायालय ने राजनीति के अपराधीकरण पर नियंत्रण लगाने के लिए जितने निर्देश दिए और उनके कारण चुनाव प्रक्रिया में जो बदलाव संभव हुए हैं, वे उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के लिए, सर्वोच्च न्यायालय ने राजनीति के अपराधीकरण पर अंकुश लगाने के लिए 2002 में एडीआर की याचिका पर फ़ैसला देते हुए सभी उम्मीदवारों के लिए हलफनामे में अपनी शिक्षा, संपत्ति और आपराधिक मामलों के पूरे ब्योरे देना अनिवार्य कर दिया था। इस फ़ैसले के कारण ही उम्मीदवारों की पूरी पृष्ठभूमि मतदाताओं के सामने ला पाना संभव हो पाया।

यह एक महत्वपूर्ण फ़ैसला था जिसने चुनाव प्रक्रिया में उम्मीदवारों के स्तर पर पारदर्शिता के साथ-साथ जवाबदेही सुनिश्चित की। इससे मतदाताओं को सभी उम्मीदवारों की पृष्ठभूमि देखकर और सोच-समझकर फ़ैसला करने में बहुत मदद मिली। लोकतंत्र में लोगों के लिए अपने उम्मीदवारों के बारे में पूरी सूचना का होना बहुत जरूरी है। इस लिहाज से यह फ़ैसला बहुत महत्वपूर्ण था।

सच यह है कि राजनीति के अपराधीकरण पर वोहरा समिति की रिपोर्ट (1993) से लेकर विधि आयोग की 244वीं रिपोर्ट (2014) तक ने कई बार ख़तरे की घंटी बजाई है। यही नहीं, चुनाव आयोग की ओर से चुनाव सुधार हेतु सरकार को भेजे गए विस्तृत प्रस्ताव (2004) से लेकर द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट - 'प्रशासन में नैतिकता' (2008) तक इस ज्वलंत मुद्दे से निपटने को लेकर अनेक सुझाव आए हैं।

लेकिन जल्दी ही यह शिकायत सामने आई कि कई उम्मीदवार या तो सूचनाएं देने के कॉलम को खाली छोड़ दे रहे हैं या सूचनाएं छुपा रहें हैं या गलत सूचनाएं दे रहे हैं। इस कारण लंबे समय से यह मांग हो रही है कि सूचना न देनेवाले, आधी-अधूरी या गलत सूचना देनेवाले प्रत्याशियों का नामांकन रद्द किया जाए।

इसके अलावा इस आधार पर इन हलफनामों की जांच की मांग भी लंबे समय से हो रही है कि हलफनामे लेने का कोई फायदा नहीं है अगर उनकी जांच-पड़ताल और गलत पाए जाने पर दोषी उम्मीदवारों पर कार्रवाई नहीं होती है। यह मांग करनेवाले संगठनों का तर्क है कि हलफनामों की जांच-पड़ताल न होने के कारण जवाबदेही सुनिश्चित नहीं हो पा रही है। हालांकि इस बारे में अभी राजनीतिक सहमति नहीं बन पाई है। लेकिन पिछले साल सर्वोच्च न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण फैसले में चुनाव अधिकारियों को उन उम्मीदवारों के पर्चे ख़ारिज करने का अधिकार दे दिया जिन्होंने नामांकन-पत्र में भरे जानेवाले कॉलम खाली छोड़ दिए हों। इसका असर 2014 के आम चुनावों में दिखाई पड़ा है।

लेकिन हलफनामों की जांच-पड़ताल और गलत जानकारी देने वाले उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ कार्रवाई और विजयी प्रत्याशियों की सदस्यता ख़ारिज करने के मुद्दे पर अभी भी सहमति नहीं बन पाई है। हालांकि जन प्रतिनिधित्व कानून (आरपीए) की धारा 125 ए के तहत गलत हलफनामा देने पर प्रत्याशी के ख़िलाफ़ मुक़दमा चल सकता है और आरोप सही साबित होने पर उसे छह महीने तक की सजा भी हो सकती है। लेकिन बावजूद इसके जीते हुए दोषी प्रत्याशी की न तो सदस्यता रद्द होगी और न ही उसे चुनाव लड़ने के अयोग्य ठहराया जा सकता है। क्योंकि गलत हलफनामा देना आरपीए की धारा 8 के अपराधों में शामिल नहीं है। जिसके तहत दोषी उम्मीदवारों को छह साल के लिए चुनाव लड़ने के अयोग्य ठहराया जा सकता है।

कहने की ज़रूरत नहीं है कि हलफनामे में गलत या आधी-अधूरी जानकारी देने पर उम्मीदवारी रद्द होने या चुनाव रद्द होने का ख़तरा न होने के कारण प्रत्याशियों पर अपने बारे में पूर्ण और सही सूचनाएं देने का दबाव नहीं रहता है। इससे हलफनामा दाखिल करके पूरी सूचना देने की वह प्रक्रिया बेमानी हो जाती है जिसका मकसद मतदाताओं को प्रत्याशियों के बारे पूरी जानकारी देना है। जिससे उन्हें अपना प्रतिनिधि चुनने में सहूलियत हो। इससे निपटने के लिए ज़रूरी है कि विधि आयोग की 244वीं रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के मुताबिक गलत या झूठा हलफनामा देने पर आरपीए की धारा 125ए के तहत सजा बढ़ाकर दो साल कर दी जाए और जुर्माना समाप्त कर

दिया जाए। दूसरे, आरपीए की धारा 125ए के तहत सजा को धारा 8 (1) में शामिल कर लिया जाए। जिसमें प्रत्याशी को चुनाव लड़ने के अयोग्य ठहराने का प्रावधान है। तीसरे, गलत या झूठा हलफनामा दाखिल करने को आरपीए की धारा 123 के तहत भ्रष्ट व्यवहार में शामिल कर लिया जाए।

यही नहीं विधि आयोग की यह भी सिफ़ारिश है कि हलफ़नामों की तेज़ी से जांच के लिए एक स्वतंत्र व्यवस्था की जाए। इसके लिए नामांकन दाखिल करने की तारीख से लेकर उनकी जांच-पड़ताल के बीच एक सप्ताह का अंतराल रखने का सुझाव भी है। इसके साथ ही आरपीए की धारा 125ए के तहत गलत या झूठे हलफनामों से जुड़े मुकदमों की सुनवाई फास्ट ट्रैक कोर्ट में करने का प्रस्ताव विधि आयोग ने किया है। कहने की जरूरत नहीं है कि इन सिफ़ारिशों को लागू करने से प्रत्याशियों पर सही हलफनामे दाखिल करने का दबाव बढ़ेगा और हलफनामे दाखिल करने का वास्तविक मकसद पूरा हो पायेगा। इन सिफ़ारिशों और सुझावों को लागू करने की जिम्मेदारी राजनीतिक तंत्र और संसद पर है। क्योंकि इसके लिए जनप्रतिनिधित्व कानून (आरपीए) को संशोधित करना होगा।

लेकिन सिर्फ़ इससे राजनीति का अपराधीकरण नहीं रुकने वाला है। उसके लिए और भी कई स्तरों पर पहल करने और सख्त फ़ैसलों की जरूरत है। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने पिछले वर्ष एक और ऐतिहासिक फ़ैसले में यह निर्देश देकर राजनीति के अपराधीकरण पर अंकुश लगाने की दिशा में बड़ी पहल की है कि किसी भी सांसद या विधायक को किसी गंभीर आपराधिक मामले में दो या उससे अधिक साल की सजा होने पर उसकी सदस्यता तत्काल प्रभाव से रद्द हो जाएगी। इससे पहले निचली अदालतों से सजा होने के बावजूद ऊपरी अदालत में अपील करने और मुक़दमा लंबित होने पर सदस्यता समाप्त नहीं होती थी। चूंकि न्याय प्रक्रिया अनेक कारणों से धीमी और सुस्त है और अदालतों में ऐसे मामले वर्षों तक लटके रहते हैं इसलिए इसका फायदा उठाकर अनेक दागी जनप्रतिनिधि विधायिका की शोभा बढ़ाते रहते हैं।

लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के इस फ़ैसले के बाद यह छिद्र बंद हो गया है। इसका असर भी तुरंत देखने को मिला है। परंतु विधि आयोग का कहना है कि सजा होने के बाद सदस्यता समाप्त होने के प्रावधान मात्र से राजनीति के अपराधीकरण पर रोक नहीं लग पाएगी क्योंकि न सिर्फ़ न्यायिक प्रक्रिया बहुत धीमी और सुस्त है बल्कि बहुत कम मामलों में सजा सुनाई जाती है। इससे निपटने के लिए जरूरी है कि न्यायालय में गंभीर अपराध के उन मामलों में आरोप तय होते ही सांसद/विधायक की सदस्यता रद्द और अन्य को चुनाव लड़ने के अयोग्य ठहरा दिया जाए जिसमें पांच साल से अधिक की सजा का प्रावधान है।

विधि आयोग का कहना है कि सजा होने के बाद सदस्यता समाप्त होने के प्रावधान मात्र से राजनीति के अपराधीकरण पर रोक नहीं लग पाएगी क्योंकि न सिर्फ़ न्यायिक प्रक्रिया बहुत धीमी और सुस्त है बल्कि बहुत कम मामलों में सजा सुनाई जाती है। इससे निपटने के लिए जरूरी है कि न्यायालय में गंभीर अपराध के उन मामलों में आरोप तय होते ही सांसद/विधायक की सदस्यता रद्द और अन्य को चुनाव लड़ने के अयोग्य ठहरा दिया जाए जिसमें पांच साल से अधिक की सजा का प्रावधान है।

विधि आयोग ने सुझाव देते हुए इसका दुरुपयोग रोकने के लिए कुछ बचाव के उपाय भी सुझाए हैं। इसके मुताबिक, राजनीतिक दुश्मनी साधने के लिए चुनाव से पहले संभावित उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ फर्जी मामले दाखिल करने की आशंका से निपटने के लिए यह प्रस्ताव है कि नामांकन से एक साल पहले तक के मामलों में यह प्रावधान लागू नहीं होगा। दूसरे, सांसदों/विधायकों के ख़िलाफ़ ऐसे मामलों में फास्ट ट्रैक कोर्ट बनाकर सालभर में सुनवाई पूरी की जाए। उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी संसद में यह सुझाव दिया है कि सांसदों/विधायकों के ख़िलाफ़ लंबित मामलों में फास्ट ट्रैक कोर्ट में सुनवाई होनी चाहिए। उम्मीद करनी चाहिए कि एनडीए सरकार इन सुझावों के मद्देनजर कानून में संशोधन के लिए शीघ्र पहल करेगी।

लेकिन क्या इन उपायों से राजनीति का अपराधीकरण पूरी तरह रुक जाएगा? जाहिर है कि ऐसा मानना बड़ी भूल होगी क्योंकि राजनीति के अपराधीकरण को केवल कानूनी या प्रशासनिक प्रावधानों से नहीं रोका जा सकता है। इसके लिए सबसे बड़ी पहल राजनीतिक स्तर पर करनी होगी। जिसमें छोटे-बड़े राजनीतिक दलों, सरकार और विपक्ष सभी की महत्वपूर्ण भूमिका है। आखिर राजनीति के अपराधीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत राजनीतिक दलों के स्तर पर ही होती है। ऐसे में, राजनीतिक दलों को यह तय करना होगा कि वे अपराधियों के प्रति शून्य सहनशीलता (जीरो टालरेंस) की नीति अपनाएंगे। दलों में अपराधियों के प्रवेश पर अंकुश लगाने की व्यवस्था करेंगे और खासकर उन्हें चुनाव लड़ने के लिए टिकट नहीं देंगे।

दूसरे, राजनीति के अपराधीकरण को रोकने में आम मतदाताओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्हें बाहुबली उम्मीदवारों में राबिनहुड खोजने/देखने से बचना होगा और उन्हें नकारना होगा। आखिर राजनीतिक पार्टियां अपराधी उम्मीदवारों में चुनाव जीतने की क्षमता को देखकर ही उन्हें टिकट देती हैं। इस कारण यह एक दुष्चक्र-सा बन गया है। अगर मतदाता अपराधी उम्मीदवारों और ऐसे उम्मीदवारों को बढ़ावा देनेवाली पार्टियों को नकारने लगें तो इससे राजनीतिक दलों पर अपराधियों को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति पर अंकुश लग सकता है। जाहिर है कि मतदाताओं को भी अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी। ❑

(लेखक भारतीय जनसंचार संस्थान (आई आईएमसी), नई दिल्ली में पत्रकारिता के एसोसिएट प्रोफेसर हैं। ई-मेल : apradhan28@gmail.com)

"PRABHA"

INSTITUTE OF CIVIL SERVICES (PICS)

AN ISO 9001:2008 CERTIFIED INSTITUTE

विगत कई वर्षों में लोक प्रशासन (हिन्दी माध्यम) से सर्वोच्च रैंक, सर्वोच्च अंक हमारे ही संस्थान से आये हैं।

सर्वोच्च रैंक - 36, 51, 88, 110, 127.....

सर्वोच्च अंक - 390, 370, 353, 346, 342.....

लोक प्रशासन (हिन्दी माध्यम) के सर्वोच्च संस्थान द्वारा अब सामान्य अध्ययन के भी उच्च स्तरीय विशेषज्ञतायुक्त एवं गुणवत्तापूर्ण मार्गदर्शन की व्यवस्था

लोक प्रशासन

By Atul Lohiya

नया बैच : 03 एवं 24 जुलाई

सिविल सेवा परीक्षा में विभिन्न वैकल्पिक विषयों में से लोक प्रशासन विषय की उपयोगिता सबसे ज्यादा

सबसे छोटा सिलेबस, रिवीजन करना आसान, रटने की आवश्यकता नहीं, समझ पर आधारित विषय

सामान्य अध्ययन

अतुल लोहिया

एवं दस विशेषज्ञों से युक्त समूह

नया बैच : 16 जून एवं 07 जुलाई

- मुख्य सह प्रारंभिक परीक्षा हेतु 11 महीने (8+3) का आधारभूत कक्षा कार्यक्रम (Basic to Advance Level)
- सामान्य अध्ययन के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर अद्यतन पाठ्य सामग्री विश्लेषणात्मक एवं बिन्दुवार नोट्स के रूप में।
- जटिल विषयों की बोधगम्य व सरल प्रस्तुति हेतु ऑडियो-विजुअल माध्यमों का प्रयोग

Paper-wise & Subject-wise मॉड्यूल सुविधा भी उपलब्ध

सामान्य अध्ययन की विशेषज्ञ टीम

- अतुल लोहिया - शासन व्यवस्था, संविधान, आंतरिक सुरक्षा, नीतिशास्त्र एवं सत्यनिष्ठा
- जैन सर (राष्ट्रपति पुरस्कृत विशेषज्ञ) - लेखन शैली, निबंध एवं साक्षात्कार
- धर्मेन्द्र (Dharmendra's Sociology) - सामाजिक मुद्दे
- प्रवीण झा (AIM IAS) - भारतीय एवं विश्व इतिहास, कला एवं संस्कृति
- रीतेश जायसवाल (Evolution IAS) - विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, सामान्य विज्ञान
- डॉ. अखिलेश (Associate Prof.) - भारतीय एवं विश्व अर्थव्यवस्था
- कुमार ज्ञानेश (New Aadhar IAS) - भूगोल, पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी
- संजीव कुमार (विषय विशेषज्ञ) - मनोवैज्ञानिक मुद्दे (नीतिशास्त्र एवं सत्यनिष्ठा)
- डॉ. अतुल मिश्रा (IIMC, JNU) - दार्शनिक मुद्दे (नीतिशास्त्र एवं सत्यनिष्ठा), IR
- मनोज कुमार सिंह (प्रशासनिक अधिकारी) - समसामयिक मुद्दे, साक्षात्कार
- ध्रुव सिंह (BSC Academy) - सीसैट विशेषज्ञ

नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा एवं अभिरुचि के लिए विशेष बैच

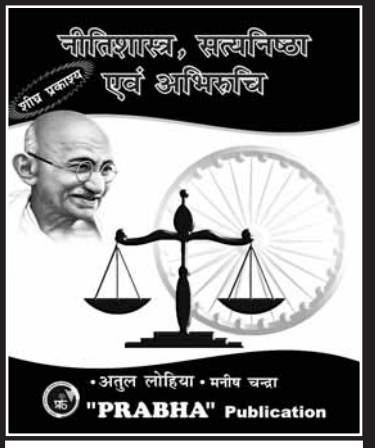

स्टॉल पर उपलब्ध

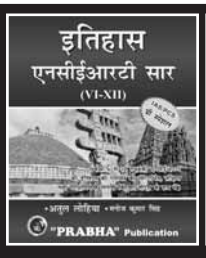

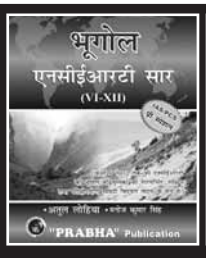

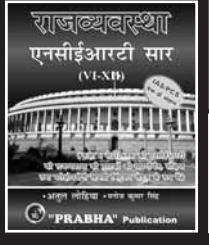

पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध

लोक प्रशासन सिविल सेवा परीक्षा का पर्याय

★सर्वोत्कृष्ट संस्थान ★सर्वोत्कृष्ट नोट्स ★सर्वोच्च रैंक ★सर्वोच्च अंक...

'अतुल लोहिया' शिक्षक; मार्गदर्शक और मित्र भी

105, VIRAT BHAWAN (MTNL BLDG.), NEAR BATRA CINEMA, MUKHERJEE NAGAR, DELHI-9

Phone : 27655134, 27653498 Cell : 9810651005, 8010282492

YH - 86/2014

जनमत और चुनाव नतीज़ों का फर्क़

सत्येंद्र रंजन

प्राप्त मतों में वृद्धि के बावजूद बसपा और सपा जैसी पार्टियां 2014 के आम चुनाव में सिमट गईं, वहीं क्षेत्रीय दलों को मिले कुल वोटों और सीटों में बेहद मामूली गिरावट और प्रमुख राष्ट्रीय दलों के कुल वोट प्रतिशत में मात्र दो प्रतिशत की वृद्धि के बावजूद भाजपा अकेले दम पर बहुमत ले आयी। दूसरी ओर, राष्ट्रीय स्तर पर वोट प्रतिशत के मामलें में बसपा सभी क्षेत्रीय दलों से आगे है लेकिन उसका खाता भी नहीं खुला। आखिर इस गणित का रहस्य क्या है। प्रस्तुत है एक तथ्यपरक विश्लेषण

सोलहवीं लोकसभा के लिए चुनाव में मतदान का रिकार्ड बना। 66 प्रतिशत से अधिक मतदाता वोट डालने पहुंचे। यानी 55 करोड़ से अधिक लोग। इनमें से 1.1 एक प्रतिशत यानी साठ लाख से ज्यादा लोगों ने नोटा यानी उपरोक्त में से कोई नहीं का बटन दबाया। ये वे लोग हैं, जिन्हें भारतीय राजनीति में उपलब्ध विकल्पों के बीच कोई अपने माफिक नहीं लगा। उन असंतुष्ट या लोकतंत्र की वर्तमान प्रणाली को भ्रष्ट मानने वाले बहुत से दूसरे लोगों से चुनाव सुधारों के बारे में पूछें, तो वे वोटिंग मशीन पर नोटा का विकल्प मिलने को सुधार की दिशा में एक बड़ा कदम बताएंगे। इसके बाद अब उनकी मांग है कि प्रतिनिधि वापसी का अधिकार दिया जाए यानी, अपने प्रतिनिधि को बदलने के लिए मतदाताओं को पांच वर्ष इंतजार नहीं करना पड़े। बीच में भी जब एक खास संख्या में लोग ऐसा करना चाहें तो उन्हें इसका अवसर मिलना चाहिए। कुछ दूसरे लोग प्रातिनिधिक जनतंत्र के बजाय प्रत्यक्ष लोकतंत्र की वकालत करते मिलेंगे। वे सीधे जनमत संग्रह से देश का शासन चलाने के पक्ष में दलील देंगे। उनका तर्क़ है कि हर गांव में इंटरनेट कियोस्क लगा दिए जाएं तो हर नीतिगत या दूसरे अहम मसलों पर इंटरनेट आधारित मतदान से देश का शासन चलाया जा सकता है। यानी वे जनता और सरकार के बीच संसद या विधानसभाओं की ज़रूरत नहीं समझते। मुमकिन है कि एक युग ऐसा आए, जब सचमुच इस तरह का लोकतंत्र स्थापित करना संभव हो जाए। परंतु आज के दौर में ये बातें रूमानी ही ज्यादा हैं। कोई व्यवस्था किसी देश की सामाजिक-आर्थिक यथार्थ और मानव विकास-क्रम के स्तर के अनुरूप ही हो सकती है। भारत में वर्तमान लोकतंत्र क्रमिक रूप से अधिक जन-भागीदारी की तरफ बढ़ा है। इसका प्रमाण मतदान और राजनीतिक चर्चाओं में लोगों की बढ़ती भागीदारी है। जिस सहजता एवं शीघ्रता से यहां सत्ता परिवर्तन हो जाता है, वह भी इसी बात को पुष्ट करता है।

इसलिए भारतीय लोकतंत्र के सामने फिलहाल असली चुनौती इसके प्रातिनिधिक स्वरूप को बदलने की नहीं बल्कि यह है कि इस व्यवस्था में अधिकतम जन-भागीदारी और चुनावों में जन-भावनाओं की अधिकतम अभिव्यक्ति को कैसे सुनिश्चित किया जाए। इस संदर्भ में वोटों के अनुपात में सीटें न मिलना एक ठोस समस्या मानी जा सकती है। हाल के वर्षों में चुनावों में पार्टियों को मिलने वाले वोट प्रतिशत और सीटों के बीच विसंगति कुछ ज्यादा खुल कर सामने आने लगी है। 2010 में बिहार में सिर्फ़ 39 प्रतिशत वोट के साथ नीतीश कुमार के नेतृत्व वाले गठबंधन ने 241 सदस्यों वाली विधानसभा में दो सौ से ऊपर सीटें जीत लीं। उधर 2012 में उत्तर प्रदेश में 30 प्रतिशत वोट के साथ समाजवादी पार्टी ने भारी जीत हासिल कर ली। उसके पहले 2007 में बहुजन समाज पार्टी ने भी वोटों के लगभग इतने ही प्रतिशत के आधार पर 403 सदस्यों की विधानसभा स्पष्ट बहुमत हासिल कर लिया था।

यह तो निर्विवाद है कि हाल के लोकसभा चुनाव के नतीजे कई अर्थों में अप्रत्याशित और चौंकाने वाले रहे। इससे भारतीय राजनीति को लेकर पिछले ढाई दशकों में बनी कुछ धारणाएं ध्वस्त हो गईं। मसलन, यह राय कि अभी लंबे समय तक केंद्र में बगैर गठबंधन के कोई सरकार नहीं बन सकती। मगर इसके साथ ये विसंगति भी खुल कर उभरी कि कुछ इलाक़ों

में संकेंद्रित समर्थन आधार के जरिये कम वोट पाकर भी अधिक सीटें जीत लेने का चलन अपने देश में बढ़ता जा रहा है। भारतीय जनता पार्टी ने सिर्फ़ 31 प्रतिशत वोट पाकर पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लिया। इसके पहले के 15 आम चुनावों में कभी ऐसा नहीं हुआ जब किसी पार्टी को 40 फीसदी से कम वोट पर स्पष्ट बहुमत मिला हो। इसके पहले सबसे कम 41.3 फीसदी वोट पर जनता पार्टी को 1977 में पूरा बहुमत मिला था। दरअसल, यह राजनीति के लगातार होते विखंडन का ही परिणाम है कि वोटों और सीटों के बीच विसंगति बढ़ती जा रही है।

ऐसा होने की वजह अपनी 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' की चुनाव प्रणाली है। इस प्रणाली के तहत उस उम्मीदवार को विजेता माना जाता है, जिसको किसी सीट पर सबसे ज्यादा वोट मिलते हैं, भले वो वोट कितने ही कम क्यों ना हों। ऐसे में जहां मुक़ाबला बहुकोणीय हो वहां पर किसी सीट पर सिर्फ़ 20 या उससे भी कम फीसदी वोट पाने वाला उम्मीदवार भी विजेता बन सकता है, क्योंकि बाकी वोट अलग-अलग उम्मीदवारों में बंट जाते हैं। अपने देश में राजनीति के बढ़ते विखंडन- यानी राजनीतिक दलों की बढ़ती संख्या और उनके बीच वोटों के बढ़ते बंटवारे के कारण इस प्रणाली के तहत मिल रहे नतीजे धीरे-धीरे बेतुके स्तर पर पहुंचते जा रहे हैं। प्रश्न यह है कि क्या इससे जनमत की सही अभिव्यक्ति हो रही है?

तो क्या अब वक्त आ गया है, जब 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' सिस्टम में बदलाव पर विचार किया जाए? इसका विकल्प क्या हो सकता है? सीधे आनुपातिक मतदान प्रणाली या एकल परिवर्तनीय आनुपातिक प्रणाली, या फर्स्ट पास्ट द पोस्ट और आनुपातिक प्रणाली का मिला-जुला रूप, जैसा कई देशों में अपनाया जाता है। गौर कीजिए, बहुजन समाज पार्टी राष्ट्रीय स्तर पर 4.1 प्रतिशत वोट पाकर भाजपा और कांग्रेस के बाद तीसरे नंबर पर रही लेकिन उसे सीट एक भी नहीं मिली। उत्तर प्रदेश में इस बार बहुजन समाज पार्टी को एक करोड़ 59 लाख से अधिक वोट मिले, जो 2009 की तुलना में तकरीबन सवा सात लाख ज्यादा हैं। मगर तब उसे लोकसभा की 20 सीटें मिली थी, इस बार खाता नहीं खुला। राज्य में समाजवादी पार्टी को करीब एक करोड़ 80 लाख वोट मिले, जबकि 2009 में उसे तकरीबन एक करोड़ 29 लाख वोट ही मिले थे। किंतु तब उसे 23 सीटें मिली थीं, इस बार वह पांच पर सिमट गई। पश्चिम बंगाल में वाम मोर्चे को 30 प्रतिशत वोट मगर सिर्फ दो सीटें मिलीं। दूसरी तरफ कांग्रेस ने सिर्फ 9.6 प्रतिशत वोट पाकर चार सीटें जीत लीं।

राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो कांग्रेस को इस बार दस करोड़ 69 लाख वोट मिले। 2009 की तुलना में उसके वोटों में लगभग एक करोड़ 22 लाख की गिरावट आई है लेकिन यह अंतर इतना नहीं है, जिससे तब 206 सीटें पाने वाली पार्टी इस बार महज 44 पर सिमट जाती। भाजपा को 17 करोड़ से ऊपर यानी 2009 की तुलना में 9 करोड़ 32 लाख 22 हजार से अधिक वोट मिले लेकिन यह बढ़ोतरी भी उतनी नहीं थी, जिससे पिछली बार 116 सीटें पार्टी को 282 सीटें मिलना तार्किक लगे। दरअसल, इस बार कांग्रेस को जहां हर 24 लाख वोट पर एक सीट मिली, वहीं भाजपा को हर छह लाख वोटों पर एक सीट मिल गई। कारण वही है। भाजपा को वोट जहां मिले वहां खूब मिले। कांग्रेस के वोट बिखरे-बिखरे मिले। बहरहाल, सवाल यह है कि क्या हालिया चुनाव नतीजे जनमत की सही अभिव्यक्ति है?

पांच वर्ष पहले 221 सीटें गैर भाजपा-गैर कांग्रेस दलों को गई थीं, इस बार ये आंकड़ा 217 है। 2006 में कांग्रेस ने 28.6 और भाजपा ने 18.82 फीसदी वोट हासिल किए थे। इसका जोड़ 47.42 प्रतिशत है। इस बार भाजपा ने 31 और कांग्रेस ने 19.3 प्रतिशत वोट प्राप्त किए। दोनों को मिला कर 50.3 फीसदी। दोनों राष्ट्रीय दलों के सम्मिलित वोटों में मात्र 2.88 फीसदी का इजाफा हुआ।

सिर्फ सीटों पर गौर करें तो ऐसी धारणा बनती है कि 2014 के चुनाव नतीजों ने भारतीय राज्य-व्यवस्था के संघीयकरण की परिघटना पर विराम लगा दिया। मगर क्या यह सच है? ध्यान दीजिए, 2009 के आम चुनाव में कांग्रेस को 206 और भाजपा को 116 सीटें मिली थीं, जिनका योग 322 बनता है। इस बार भाजपा को 282 और कांग्रेस 44 सीटें मिली हैं, जिनका योग 326 होता है। यानी पांच वर्ष पहले 221 सीटें बाकी दलों को गई थीं, इस बार ये आंकड़ा 217 है। 2006 में कांग्रेस ने 28.6 और भाजपा ने 18.82 फीसदी वोट हासिल किए थे। इसका जोड़ 47.42 प्रतिशत बनता है। इस बार भाजपा ने 31 और कांग्रेस ने 19.3 प्रतिशत वोट प्राप्त किए। यानी दोनों को मिला कर 50.3 फीसदी वोट मिले। मतलब यह कि दोनों राष्ट्रीय दलों के सम्मिलित वोटों में मात्र 2.88 फीसदी का इज़ाफ़ा हुआ। उनकी चार सीटें बढ़ीं। क्या इस आधार पर यह कहने का आधार बनता है कि 1989 के बाद से राज्य-व्यवस्था के संघीयकरण की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी, वह 2014 में निर्णायक रूप से पलट गई है? चुनाव परिणामों के स्वरूप से ऐसी ही धारणा बनी।

दरअसल, भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिलने का कारण यह है कि उसके मजबूत आधार वाले राज्यों (गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और झारखंड) में भी उसकी एकतरफा आंधी चली। उधर उत्तर प्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र जैसे बड़े राज्यों में उसके वोटों में जबरदस्त उछाल आया। वहां दूसरे तमाम दलों का लगभग सफाया हो गया लेकिन ऐसा होने का एक कारण यह भी रहा कि भाजपा ने सहयोगी दल चुनने में बुद्धिमत्ता दिखाई। इसी कौशल से आंध्र प्रदेश में भी उसे सफलता मिली। असम में उसने अनपेक्षित कामयाबी हासिल की। परंतु ध्यान देने की बात यह है कि इनमें से ज्यादातर जगहों पर उसे सफलता कांग्रेस की कीमत पर मिली। क्षेत्रीय दलों के वोटों में वह ज्यादा सेंध नहीं लगा पाई। तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल, ओडिशा आदि में 'मोदी लहर' का असर दिखा, लेकिन यह इतनी ताक़तवर नहीं थी कि भाजपा को सीटों का महत्वपूर्ण लाभ होता।

इसके अलावा चुनाव सुधार से जुड़े जो मुद्दे हैं, उनका संदर्भ सिर्फ तकनीकी, कानूनी या प्रक्रियागत नहीं है। मतलब यह कि उनका राजनीतिक संदर्भ है। वे सुधार जनता की जागरुकता और सक्रिय भागीदारी से जुड़े हुए हैं। महज कानून या संहिताएं बना कर उन मोर्चों पर ज्यादा कुछ हासिल नहीं किया जा सकता। मसलन चुनाव सुधारों पर चर्चा में आदर्श चुनाव आचार संहिता एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। इस संदर्भ में हमें यह याद करना चाहिए कि 2012 में उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के समय जब चुनाव आचार संहिता को कानूनी आधार देने की बात आई, तो निर्वाचन

आयोग ने इसका कड़ा विरोध किया था। मतलब यह कि चुनाव आयोग ने आज की स्थिति को बेहतर माना। आयोग की राय है कि आचार संहिता को विधायी रूप दे दिया जाए तो उससे संबंधित विवाद अदालतों के दायरे में चले जाएंगे, और फैसले वर्षों तक लटके रहेंगे। जाहिर है, इसे निर्वाचन आयोग स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के लिहाज के माफिक नहीं मानता। ये बात क्या यह जाहिर नहीं करती कि कम से कम सियासी मामलों में जनमत का दबाव कानून से मिलनी वाली ताकत से ज्यादा कारगर होता है? आखिर आचार संहिता के मामले में चुनाव आयोग की ताक़त क्या है? पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एस. वाई. कुरैशी ने एक चर्चा के दौरान कहा था कि आयोग चुनाव आचार संहिता को लागू कर पाता है तो इसलिए कि राजनीतिक दल उससे सहयोग करते हैं। स्पष्टत: राजनीतिक दल ऐसा करते नहीं, बल्कि जनमत के दबाव में उन्हें ऐसा करना पड़ता है।

यह मिसाल चुनाव सुधारों को लेकर जारी चर्चा में इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि जिन सुधारों की कल्पना की जाती है या इस बारे में जो भी ठोस सुझाव दिए जाते हैं, उनकी सफलता इसी पर निर्भर करती है कि आखिरकार लोग उस अमल के लिए कितने निगहबान होंगे। भारतीय चुनावों की आज उच्च श्रेणी की कायम हो पाई है, तो इसका श्रेय चुनाव आयोग को तो जाता है, लेकिन टी.एन. शेषन से लेकर आज तक के दौर में निर्वाचन आयोग इसलिए सफल है, क्योंकि उसके साथ जनमत की ताक़त है। आज लगभग पूरे भरोसे के साथ यह कहा जा सकता है कि अपने यहां चुनाव भले स्वच्छ ना रह पाते हों, लेकिन परिणाम लोगों के वोट से ही तय होते हैं। मुमकिन है कि कई संदर्भों में वोट देने के पीछे जो प्रेरक कारण रहते हैं, उन्हें स्वस्थ ना माना जाए लेकिन उनकी जड़ें हमारे अपने समाज में हैं। इन कारणों को समझने के लिए हमें अपने सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों पर गौर करना होगा। मतदाता जातीय या सांप्रदायिक भावनाओं से प्रेरित होते हैं, या कोई धन देकर उनके वोट खरीद लेता है- तो इन बुराइयों को चुनाव संबंधी कानून या नियमों में किसी परिवर्तन से दूर नहीं किया जा सकता।

हां, धन का प्रभाव एक बड़ा मुद्दा है। चुनावों में गैर-कानूनी धन के इस्तेमाल की शिकायत बढ़ती गई है। इससे पेड न्यूज और मतदाताओं को सीधे नकदी के भुगतान या शराब की बिक्री आदि जैसे चलन सामने आए हैं। यह आशंका बढ़ती जा रही है कि अगर इस पर नियंत्रण नहीं हुआ, तो लोकतंत्र असल में धन तंत्र में तब्दील हो जाएगा। हालांकि ऐसी आशंकाएं भी अक्सर लोकतंत्र के वर्गीय चरित्र की अनदेखी करके ही जताई जाती हैं। उनमें अपने लोकतंत्र के वास्तविक चरित्र की समझ का अभाव रहता है, इसके बावजूद इस आशंका को पूरी तरह निराधार नहीं कहा जा सकता। मगर इसे कैसे रोका जाए? इस बारे में चुनाव आयोग जो कदम उठाता रहा है, उसका व्यवहार में कम ही असर हुआ है। बल्कि कुछ राजनीति शास्त्रियों का यह कहना बिल्कुल सही है कि पहले चुनावों में जो धन खुलकर ख़र्च होता था, अब वह परदे के पीछे से होने लगा है। परिणाम यह है कि प्रचार, झंडे, बैनर आदि पर जो पैसा खर्च होता, उसे उम्मीदवार अब नकद या शराब के रूप में बांट देते हैं। ऐसे ही अनुभवों के आधार पर यह कथन अब आम हो गया है कि चुनाव आयोग पिछले डेढ़ या दो दशकों में चुनावों से गुंडागर्दी खत्म करने में तो काफी हद तक सफल है, लेकिन धन का प्रभाव वह नहीं रोक पाया है।

अगर चुनावों पर धन का प्रभुत्व है, तो उसका सीधा नाता अपने समाज के ढांचे से है। एक वर्ग विभाजित और विषम समाज में महज कानून के जरिये ताक़तवर के प्रभाव को नियंत्रित करने की कोशिशें कभी पूरी तरह सफल नहीं हो सकती। इसलिए जो लोग लोकतंत्र बनाम धनतंत्र की बहस में पड़ते हैं, उन्हें धन एवं ताकत के वर्चस्व को समग्रता में समझने और समाज में उसे नियंत्रित करने के उपायों पर विचार करना चाहिए।

तो इसे कैसे रोका जा सकता है? आयोग चुनावों के दौरान खर्च पर नियंत्रण के लिए जिन कानूनों की जरूरत बताता है, उससे यह हो पाने की उम्मीद नहीं है, क्योंकि बिना कानूनी प्रावधान के भी चुनाव आयोग के पास आज पर्याप्त अधिकार हैं। आखिर कानून बन जाने से कितना फर्क पड़ जाएगा? फिर राजनीतिक दलों को मिलने वाले चंदों में पारदर्शिता के उपायों की जो मांग की जाती है, उससे सरकारों की निर्णय या नीतियों संबंधी जवाबदेही तय करने में तो काफी मदद मिल सकती है, लेकिन उससे चुनाव ख़र्च नियंत्रित हो सकेगा- यह मानना कठिन है। दरअसल, अगर चुनावों पर धन का प्रभुत्व है, तो उसका सीधा नाता अपने समाज के ढांचे से है। एक वर्ग विभाजित और विषम समाज में महज कानून के जरिये ताकतवर के प्रभाव को नियंत्रित करने की कोशिशें कभी पूरी तरह सफल नहीं हो सकतीं। इसलिए जो लोग लोकतंत्र बनाम धनतंत्र की बहस में पड़ते हैं, उन्हें धन एवं ताकत के वर्चस्व को समग्रता में समझने और समाज में उसे नियंत्रित करने के उपायों पर विचार करना चाहिए। वैसे, मौजूदा परिस्थितियों में सामाजिक यथार्थ से परिचित राजनीति शास्त्रियों का यह सुझाव जरूर गौरतलब है कि चुनाव में गैर-कानूनी धन को रोकने के लिए उपाय करने के साथ-साथ यह भी जरूरी है कि इसमें अच्छे धन के लिए गुंजाइश बनाई जाए। यानी कोई धन के अभाव में चुनाव लड़ने से वंचित हो जाए, ऐसा नहीं होना चाहिए। इसलिए चुनाव के लिए सरकारी धन दिए जाने का सुझाव दिया जाता है। यह तथ्य है कि सिर्फ धन चुनाव परिणाम को तय नहीं करता। ऐसा होता तो हर चुनाव वही लोग जीतते जिनके पास सबसे ज्यादा धन है। फिर भी यह हक़ीक़त जरूर है कि धन के अभाव में लोग चुनावी मुक़ाबले में नहीं आ पाते। ईमानदारी से समाज सेवा करने या विचारधारात्मक आग्रहों के कारण राजनीति में आने वाले लोगों के साथ अक्सर यह समस्या रहती है। अगर उनके लिए वैध धन उपलब्ध हो, तो अपने सामाजिक कार्यों या विचारों के कारण समाज में पहचान बनाने वाले लोगों के लिए न सिर्फ चुनाव लड़ना, बल्कि धीरे-धीरे मुक़ाबले में अपनी उपस्थिति बनाना भी संभव हो सकता है।

यह महज संयोग नहीं है कि चुनाव सुधारों के प्रति प्रशंसनीय उत्साह दिखाने वाले पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एस.वाई. कुरैशी चुनाव लड़ने के लिए सरकारी धन दिए जाने के प्रति अनुत्साहित रहे। जबकि यह चुनाव सुधारों की दिशा में एक बुनियादी कदम साबित हो सकता है। इसके विपरीत कुरैशी ने प्रक्रियागत बदलाव के अनेक सुझाव दिए। तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को लिखे पत्र में उन्होंने प्रस्तावित सुधारों का विस्तार से जिक्र किया। कहा जा सकता है कि आयोग के अनुभवों के आधार पर ये सुझाव तैयार किए गए। यानी कुरैशी के

सुझाव अहम हैं। उन पर गौर किया जाना चाहिए। लेकिन यह बेहिचक कहा जा सकता है कि ये सुझाव पर्याप्त नहीं हैं बल्कि कुछ मामलों में वे नौकरशाही नजरिये से निकले लगते हैं, जिनमें व्यवस्था को अधिक से अधिक लोकतांत्रिक बनाने के बजाय राजनीतिक दलों एवं उनकी गतिविधियों को नियंत्रित करने की चिंता दिखती है। मसलन, राजनीति का अपराधीकरण रोकने के लिए सुझाए गए उपायों को लिया जा सकता है।

अपराधी राजनीति में नहीं आएं, यह सही दिशा में सोचने वाले हर व्यक्ति की इच्छा होगी। मगर ऐसा करने की कोशिश में सामाजिक संघर्षों की पृष्ठभूमि से राजनीति में आए नेताओं का रास्ता बंद कर दिया जाए, यह लोकतंत्र की मूल भावना के ख़िलाफ़ होगा। अक्सर दलित, पिछड़े एवं आर्थिक रूप से शोषित समूहों के हित में संघर्ष करने वाले लोगों पर अनेक तरह के मुकदमे थोप दिए जाते हैं। अगर कुरैशी के सुझावों को मान लिया जाए, तो ऐसे तमाम लोगों के चुनाव लड़ने पर रोक लग जाएगी, जिन के ख़िलाफ़ कोर्ट में आरोप तय हो चुके हों। फिलहाल यह रोक सजायाफ़्ता होने पर लगती है। भारत के सामाजिक यथार्थ को देखते हुए क्या कोई न्यायप्रिय व्यक्ति इस सुझाव की तरफदारी कर सकता है?

दरअसल, सिर्फ कानून या नियमों में बदलाव से चुनाव स्वच्छ हो जाएंगे, यह आशा भी नहीं की जा सकती। ऐसे सुझाव सिर्फ उन समूहों की तरफ से आते हैं, जो राजनीति की धूल-धक्कड़ से दूर हैं। यह उन लोगों की सोच है जो एक व्यक्ति - एक वोट - एक मूल्य की व्यवस्था ने भारतीय समाज में सदियों से उत्पीड़ित समूहों को जो राजनीतिक ताकत दी है, उससे नावाकिफ़ हैं। इसीलिए चुनाव सुधारों की चर्चा में जनतांत्रिक विषयवस्तु को जोड़ना अब बेहद जरूरी हो गया है लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि ऐसा करने वाली ताक़तें पर्याप्त संख्या में मौजूद नहीं हैं। अपने को जन-आंदोलन कहने वाले संगठनों से ऐसी उम्मीद जरूर की जा सकती थी लेकिन ये संगठन संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति एक गजब किस्म के द्रोह भाव से ग्रस्त नज़र आते हैं। चुनावों की साख और प्रकारांतर में लोकतंत्र के विकासक्रम की सीढ़ी के रूप में संसदीय व्यवस्था की वैधता को संदिग्ध बनाने में वे और आम शासक एवं मध्य वर्ग के लोग समान धरातल पर हैं। ऐसे संगठनों या उनके कार्यकर्ताओं से संवाद करें, तो मौजूदा चुनाव प्रणाली की खामियों की एक लंबी फेहरिस्त उभरती है लेकिन इसकी बारीकी में जाएं, तो यह साफ होगा कि उनकी शिकायत असल में चुनाव प्रणाली से नहीं, बल्कि मौजूदा लोकतांत्रिक व्यवस्था से है। इस संदर्भ में शासक, सवर्ण एवं आम मध्यवर्ग की अपने लोकतंत्र से शिकायत समझी जा सकती है। वोट के अधिकार ने व्यवस्था में संख्या बल को जो ताक़त दी है, उससे उनकी परेशानी स्वाभाविक है। अपनी तमाम खामियों के साथ हमारी संवैधानिक व्यवस्था ने सामाजिक लोकतंत्र का जो आधार तैयार किया है, उससे सुविधाओं एवं अधिकारों का उन समूहों तक प्रसार शुरू हुआ है, जिसकी पूर्व-व्यवस्थाओं में कोई गुंजाइश नहीं थी। जाहिर है, ऐसा कुछ वर्गों के विशेषाधिकारों की क़ीमत पर हुआ है। इसलिए ऐसे समूहों की चर्चा में चुनाव सुधार का मतलब या मकसद राजनीति के इस लोकतांत्रिक स्वरूप को नियंत्रित करना हो, तो इसे समझा जा सकता है। मगर इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के प्रति कथित जन आंदोलनों एवं उनके कार्यकर्ताओं का नकारात्मक दृष्टिकोण चुनाव सुधारों की चर्चा में जनतांत्रिक आयाम जोड़ने की राह में रुकावट बन जाए, तो इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा।

फिलहाल असली मुद्दा यह है कि चुनाव सुधारों की चर्चा को महज नकारात्मक उपायों तक सीमित न रहने दिया जाए। इसमें सकारात्मक पहल की संभावना को अधिक से अधिक जगह दी जाए। एनजीओ संचालित जन आंदोलन और नौकरशाहों से इस संदर्भ में उम्मीद जोड़ने का कोई आधार नहीं है, जिनके लिए चुनाव सुधार का मतलब लोकतांत्रिक राजनीति को बदनाम करना और उसकी प्रक्रियाओं पर नियमों तथा कानूनों का ऐसा शिकंजा कसना है, जो लोकतंत्र के आगे बढ़ने का रास्ता अवरुद्ध कर दे। ऐसा संभवत: वे लोग या समूह ही कर सकते हैं, जो भारतीय लोकतंत्र के प्रति सकारात्मक नज़रिया रखते हैं। उन लोगों को फिलहाल उन विकल्पों पर सोचना चाहिए जिनसे भारतीय चुनावों एवं जनमत की वास्तविक अभिव्यक्ति हो सके। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं, साथ ही ज़ामिया मिलिया विश्वविद्यालय के एमसीआरसी में अतिथि प्राध्यापक हैं। ई-मेल : satyendra.ranjan@gmail.com)

श्रद्धांजलि

प्रकाशन विभाग अपनी संपादक आर. अनुराधा के असामयिक निधन पर शोक व्यक्त करता है। एक सक्षम अधिकारी, लेखिका, कैंसर पीड़ितों के लिए सक्रिय कार्यकर्ता आदि के तौर पर उन्होंने अपना उत्कृष्ट योगदान किया है। बड़ी तादाद में उनके प्रशंसकों के साथ ही प्रकाशन विभाग के अधिकारी व अन्य कर्मचारियों को उनकी कमी महसूस होगी तथापि वह अपने मित्रों और उन लोगों के लिए प्रेरणास्रोत बनी रहेंगी जिनकी ज़िंदगियों को उन्होंने अपने कार्यों से प्रभावित किया है। प्रकाशन विभाग स्व. अनुराधा के परिवार के प्रति अंत:करण से संवेदना प्रकट करता है।

असम के नदी द्वीप समुदायों की एकमात्र आशा

एजरा परवीन रहमान

असम के नदी द्वीप के निवासियों के दैनिक जीवन में नावें रोज़मर्रा की ज़रूरत है। आखिरकार वे मुख्य भूमि को जोड़ने के प्रमुख साधन जो हैं। जरूरी सामानों, सेवाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए नावें प्रमुख साधन हैं। लेकिन द्वीप के किनारों पर कुछ सप्ताहों के अंतराल पर एक खास किस्म की नाव आकर लगती है तो लोग उत्साह से भर जाते हैं। यह बोट क्लीनिक है, यह कहकर लोग आवाज़ें लगाने लगते हैं। यह आवाज़ फिज़ाओं में गूंजने लगती है और लोग नाव के आसपास जुटने लगते हैं। इस नाव में चिकित्सक, पैरामेडिकल स्टाफ और एक प्रयोगशाला भी होती है, जो वहां के रहवासियों के स्वास्थ्य की जांच करती है और उपचार में मदद करती है। द्वीप के निवासियों के लिए यह आशा की एक किरण की तरह है और शायद इसीलिए लोगों ने इसे 'आशाओं की नाव' का नाम दे दिया है।

सेंटर फॉर नॉर्थ ईस्ट स्टडीज एंड पॉलिसी रिसर्च (सीएनइएस) ने सन् 2005 में एकमात्र नाव 'अखा' (आशा) असम के डिब्रूगढ़ जिले में इन द्वीपों के निवासियों की स्वास्थ्य ज़रूरतों के मद्देनज़र शुरू की थी। यहां लचर स्वास्थ्य सुविधाओं और मुख्य भूमि से कटे हुए संपर्क की स्थितियों के कारण मॉनसून में यहां के निवासियों की ज़िंदगी काफी कठिन हो जाती थी। कई किस्म की गंभीर बीमारियों से लोग, खासकर महिलाएं और बच्चे त्रस्त रहते थे। तभी यह विचार आया कि अगर ये लोग नहीं आ सकते तो इन तक अस्पताल ही क्यों न पहुंचाया जाए। फिर इस बोट क्लीनिक की शुरुआत की गयी।

इस क्लीनिक की सफलता ने अंततः सभी का ध्यान खींचा और इसके बाद राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और यूनिसेफ के साथ पीपीपी मॉडल पर इस परियोजना को असम के 13 जिलों में सफलतापूर्वक पहुंचाया गया।

बोट क्लीनिक की सफलता इतनी आसान नहीं रही। इसे वहां के लोगों के बदलते मिज़ाज के साथ उदाहरणस्वरूप समझा जा सकता है। पहले लोगों ने इस पूरे कार्यक्रम को संदेह की नज़रों से देखा था। जब तक कि इसके पीछे की मंशा को लोगों को पूरी तरह नहीं समझाया गया था। गुवाहाटी से 70 किलोमीटर दूर नलबाड़ी जिले के बालेश्वर सपोरी गांव की तीन बच्चों की मां 25 वर्षीय अमिया बेगम का उदाहरण सामने रखा जा सकता है। वे कहती हैं। ''पहले जब बोट क्लीनिक आयी तो उत्सुकता हुई कि आखिर यह है क्या? हमें इस पर पूरी तरह विश्वास नहीं था। बुजुर्गों का विश्वास था कि यह एक अस्थायी प्रयास है और इससे बहुत लाभ नहीं होगा। लेकिन नावें बार-बार चिकित्सक और दवाओं के साथ समय-समय पर आती रहीं। जब हम वहां जाने लगे तो हमारी समस्याओं का समाधान होने लगा। धीरे-धीरे हमारा विश्वास बढ़ता गया। वे मुस्कुराते हुए कहती हैं, अब जब भी बोट क्लीनिक आती है, हम दौड़कर वहां पहुंच जाते हैं और लाइन लगाकर खड़े हो जाते हैं।''

अमिया की सहेली शमा कहती हैं, पहले यह भी हिचकिचाहट होती थी कि गर्भवती औरतों की जांच पुरुष चिकित्सक कैसे कर सकते हैं। लेकिन जब हमने चिकित्सकों और नर्सों का समर्पण भाव देखा, जिस तरह वे हमें विस्तार से समस्याओं के बारे में बताते थे, उसके बाद हमने भी घूंघट उठा लिया और अपनी समस्याएं खुलकर बताने लगीं ''शमा कहती हैं, अब हम अपनी नियमित तौर पर जांच करवाते हैं, बीमारियों का इलाज करवाते हैं और हमें मुफ्त दवाएं भी दी जाती हैं।

पहले हमें दूर के अस्पताल में जाने के लिए नाव का किराया दस रुपये देने पड़ते थे। हम गरीब लोग हैं और जब तक कोई गंभीर बीमारी न हो, हम दूर के अस्पताल नहीं जाते थे। लेकिन बोट क्लीनिक से काफी सहूलियत हो गयी है।'

बोट क्लीनिक के काम करने का खास मॉडल यह है कि द्वीप के गांवों में अकसर हेल्थ कैंप लगाये जाते हैं और इसकी सूचना आशा कार्यकर्ताओं द्वारा दी जाती है। चिकित्सक लोगों का इलाज करते हैं और गंभीर समस्या होने पर मुख्य भूमि के अस्पतालों में मरीजों को रेफ़र भी किया जाता है। मातृत्व और शिशु स्वास्थ्य पर खास फ़ोकस किया जाता है। बोट क्लीनिक के स्टाफ के अनुसार बच्चों के टीकाकरण को भी लक्ष्य कर बोट क्लीनिक के माध्यम से कैंप लगाये जाते हैं।

एनआरएचएम के आंकड़ों के अनुसार बोट क्लीनिक ने सन् 2008 से इस साल के बीच 13,316 हेल्थ कैंप लगाये हैं, 60,085 महिलाओं को प्रसव-पूर्व और 15,694 महिलाओं को प्रसव पश्चात स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया करायी हैं और अन्य सुविधाओं के साथ-साथ 1,23,342 बच्चों को नियमित तौर पर प्रतिरक्षण टीके भी दिलवाये हैं। इस बोट क्लीनिक का कितना सकारात्मक प्रभाव हुआ है इसे ब्रह्मपुत्र नदी पर स्थित विश्व के सबसे बड़े द्वीप माजुली के संदर्भ में देखा जा सकता है, जहां सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र और उपकेंद्र होने के बावजूद वहां के लोग बेसब्री से हर बार बोट क्लीनिक का इंतजार करते देखे जा सकते हैं।

माजुली के सामूगुड़ी गांव की देबोश्री रॉय कहती हैं, हमारे गांव से निकटवर्ती स्वास्थ्य उपकेंद्र चार किलोमीटर दूर है और इसके बीच में एक नदी भी पड़ती है। वास्तव में वह उपकेंद्र 15 गांवों को प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं देता है, जिनमें से 14 गांव नदी के किनारे हैं। बोट क्लीनिक बेहतर और ज़्यादा आरामदायक विकल्प है। यह गांवों के नज़दीक आ जाता हैं खासकर तब जब मॉनसून में नदीं में जल स्तर काफी बढ़ जाता है।

जोरहाट जिले में बोट क्लीनिक के कार्यक्रम पर नज़र रखने वाली सीएनइएस की ऋतुरेखा बरुआ कहती हैं, टीम बच्चों के जन्म में भी सहायता करती है। यहां संचार बहुत सुचारू नहीं है और कई बार आपातकालीन स्थिति में महिलाएं बड़े अस्पताल में प्रसव के लिए जा नहीं पाती। ऐसे समय में हम प्रसव में भी मदद करते हैं। ज्ञातव्य है कि असम देश में सबसे ज़्यादा मातृत्व मृत्यु की समस्या से जूझ रहा है। यहां प्रति एक लाख प्रसव के दौरान 328 महिलाओं की मृत्यु हो जाती है।

बोट क्लीनिक के चिकित्सक मिन्हाजुद्दीन अहमद का कहना है, क्लीनिक परिवार नियोजन को भी बढ़ावा देता है। हालांकि द्वीप के निवासियों के बीच अशिक्षा की वजह से यह काम काफी कठिन भी साबित होता है। यहां अंधविश्वास काफी फैले हुए हैं। परिवार नियोजन को बढ़ावा देने के हमारे दायित्वों को पूरा करने के लिए हमें लोगों की मानसिकता बदलनी होगी। उनके बीच विश्वास कायम करना होगा और मन में बैठी गलत धारणाएं दूर करनी होंगी। हम लड़कियों की कम उम्र में शादी टालने की कोशिशों में भी जुटे हैं और इसके साथ-साथ दो बच्चों के बीच का अंतर भी कायम करने में मदद करते हैं। वे कहते हैं, द्वीप के निवासियों में जल जनित बीमारियों और चर्म संक्रमण जैसे रोग सामान्य तौर पर देखे जाते हैं।

निस्संदेह, असम की ब्रह्मपुत्र नदी के 2500 द्वीपों पर रह रहे लगभग 30 लाख लोगों का जीवन बिल्कुल अलग और कठिन है। लेकिन बोट क्लीनिक की टीम के लिए भी लक्षित समुदायों तक पहुंचना हमेशा चुनौतियों से भरा ही होता है। सीएनइएस के मुख्य कार्यकारी अधिकारी दीपांकर दास के अनुसार ''सूखे और मॉनसून दोनों में ही परेशानियां अपार होती हैं। सूखे मौसम में पानी सूख जाता है और मोटर बोट के चलने के लिए कम से कम चार फीट पानी का होना जरूरी है। एक बार तो हमें 10 किलोमीटर पैदल चलकर जाना पड़ा था। इसी तरह बरसात के दिनों में लगातार बिजली और बाढ़ का सामना करना पड़ता है और कई बार विशेषज्ञ टीम द्वारा हमें बचाया जाता है।''

डिब्रूगढ़ जिले के एक द्वीप की निवासी अंजना दास मुस्कुराते हुए कहती हैं, पहले इन द्वीपों के लिए स्वास्थ्य सुविधाएं किसी विलासिता से कम न थीं लेकिन बोट क्लीनिक ने हमलोगों के जीवन को बेहतर आशाओं से भर दिया है। ❑

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं। यह आलेख नेशनल फाउंडेशन ऑफ इंडिया के तहत नेशनल मीडिया फेलोशिप कार्य का हिस्सा है।)

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने के लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और ओपन फाईल yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा, वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिएं। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की यथासंभव एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

- व. संपादक

माइलेज वृद्धि हेतु आटोइंजन में सुधार

शिब शंकर मंडल

सैंतीस वर्षीय शिब शंकर मंडल अलवरा के कोकराघाट में मेकेनिक हैं। उन्होने ऑटो इंजन में सुधार कर एक ऐसी तकनीक का प्रयोग किया है जिससे अंदर आने वाली वायु पहले ही गर्म हो जाए ताकि ईंधन का दहन पूर्ण रूप से हो सके। इससे माइलेज में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

शिब शंकर असधारण प्रतिभा के धनी मेकेनिक हैं। लोग उन्हें प्यार से नारायण कहकर संबोधित करते हैं। मूलरूप से बांग्लादेश निवासी उनका परिवार विभाजन के काफी पूर्व ही भारत आ गया था। उनके दादा जी एक बढ़ई (सुतार) थे। परंतु उनके पिताजी ने संगीत के उपकरणों की मरम्मत का पेशा अपनाया। उनके परिवार में माता-पिता के अतिरिक्त दो बड़े भाई और एक छोटी बहन है। ब्रह्मकुमारी पंथ का पक्का अनुयायी उनका परिवार काफी आध्यात्मिक है और अपने आंगन में अर्धनारीश्वर का मंदिर बनवा रखा है जहां शिब शंकर के पिता जी नियमित रूप से अनुष्ठान पूर्वक पूजा करते हैं। उनके घर में एक बड़ा-सा ध्यान केंद्र भी है जहां पास-पड़ोस के अन्य भक्त और श्रद्धालु भी प्रातः और संध्या को प्रार्थना के लिए एकत्रित होते हैं।

शिब शंकर का बचपन से ही अध्ययन के साथ-साथ रचनात्मक कार्यों में दिलचस्पी थी। वे तरह-तरह के सृजनात्मक मॉडल बनाया करते थे। शिब शंकर पवन टर्बाइन, जलपंप और मोटरसाइकिल आदि जैसे मॉडल बनाया करते थे और विज्ञान प्रदर्शनियों में भाग लेते थे। उन्होंने ढेर सारे पुरस्कार जीते। दुर्भाग्यवश वे दसवीं कक्षा से आगे नहीं पढ़ सके। परंतु विज्ञान के मॉडल बनाने का काम उन्होंने जारी रखा और साथ ही इलेक्ट्रिक वायरिंग, घरेलू जल व्यवस्था आदि जैसे काम भी हाथ में लेने लगे। बाद में अपने भाई के साथ मिलकर उन्होंने अपनी स्वयं की वर्कशॉप (कार्यशाला) खोली और छोटे-मोटे मरम्मत कार्य के आर्डर लेने लगे। इसी के साथ-साथ उन्होंने विज्ञान के मॉडल बनाने का काम भी जारी रखा। ये मॉडल बोडो साहित्य सभा और कृषि विभाग की प्रदर्शनियों के साथ-साथ अन्य प्रदर्शनियों में भी प्रदर्शित की जाती थी। इसी प्रक्रार की एक प्रदर्शनी में उनके हिताचीक्रेन के मॉडल ने एक इंजीनियर को इस कदर प्रभावित किया कि उसने उन्हें अरुणाचल प्रदेश में 'ग्रैमन' कंपनी के परियोजना स्थल पर काम दे दिया। परंतु शिब शंकर ने इस काम को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह स्थान उनके घर से काफी दूर था। परंतु अब वे कोकराझार के बाहर काम करना चाहते हैं। मॉडलों और यांत्रिकी में दिलचस्पी के अलावा शिब शंकर के व्यक्तित्व को एक रचनात्मक पहलू भी है। उन्हें संगीत में भी काफी रुचि है। अच्छा गाने के साथ-साथ वे हारमोनियम भी बजा लेते हैं। डिस्कवरी चैनल देखना भी उनकी पंसदीदा गतिविधियों में शामिल हैं।

प्रारंभ

शिब शंकर बचपन से ही ऐसी मोटरसाइकिल बनाना चाहते थे, जिसमें ईंधन की कम से कम खपत हो और जिसकी रखरखाव भी ज्यादा न करनी पड़े। उन्होंने 1990 के दशक में उत्तरार्ध में ऐसी ही बाइक बनाने का अथक प्रयास किया। परंतु उसका प्रदर्शन मौजूदा मोटरसाइकिलों के समकक्ष नहीं था। इससे उन्हें बड़ी निराशा हुई। परंतु उनमें लगन की कोई कमी नहीं थी। पर्याप्त तकनीकी ज्ञान का अभाव ही उनकी अभिलाषा के आड़े आ रहा था। उनके प्रयोग कई बार गड़बड़ा जाते और उन्हें सबकुछ नये सिरे से शुरू करना पड़ता था। उन्होंने उन वर्कशॉपों का चक्कर लगाना शुरू किया जहां मोटर साइकिलों के कलपुर्जे मिलते थे। गैराजों में मोटरसाइकिलों के इंजनों के कार्यशील मॉडलों का अध्ययन करते-करते उन्होंने उन खामियों की पहचान की जिससे उनकी कार्यक्षमता में कमी आती थी। परिवर्तनों के अनेक दौर के बाद शिब शंकर वाल्व प्रणाली और हीट

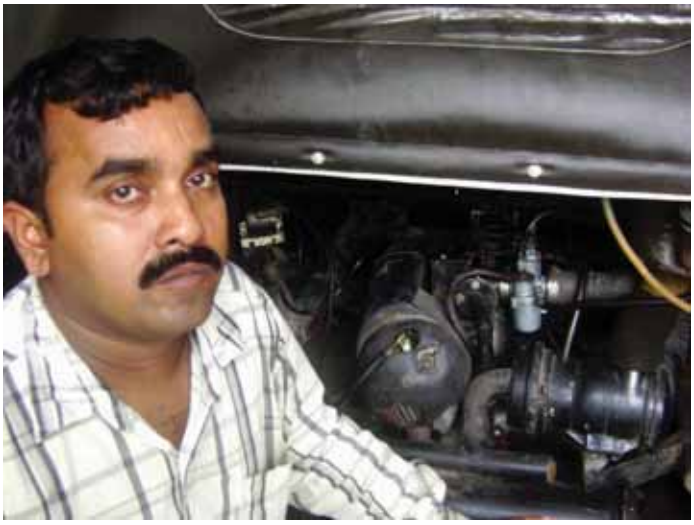

चैंबर में सुधार ला सके। जिसके परिणामस्वरूप मोटर साइकिल का माइलेज 65 किमी प्रति लीटर तक बढ़ गया। जब वे इंजन पर काम कर रहे थे तब उन्हें पता चला कि ईंधन का अगर पहले ही गर्म कर लिया जाए तो उसके अच्छे नतीजे मिलते है। ईंधन का दहन बेहतर ढंग से होता है।

एक दिन उन्होंने अख़बारों में टू-स्ट्रोक इंजनों के उपयोग को चरणबद्ध तरीके रूप से बंद किये जाने की खबर पढ़ी। एक टेलीविजन कार्यक्रम में उन्हें पता चला कि ऑटोरिक्शा परिवहन का सबसे किफायती साधन है। इस प्रकार ऑटोरिक्शा में अपनी यह तकनीक आजमाने का विचार उनके दिमाग में आया। महीनों के इस काम पर डटे रहे और अनगिनत प्रयोग किए। अंतत: वे इच्छित परिवर्तन लाने में सफल रहे और माइलेज में 30 प्रतिशत तक की वृद्धि हासिल करने में कामयाबी पाई। यह ऑटोरिक्शा पिछले तीन वर्षों से कुशलता पूर्वक चल रहा है। इसके अलावा ऑटोरिक्शा की 'नाभकीय' समस्या खटखट की आवाज़ का निराकरण भी हो गया है।

अपने जीवन और कार्य के बारे में शिब शंकर बतातें हैं ''कभी-कभी जब मुझे अपने काम के लिए जरूरी लेद (खराब) मशीन अथवा औजारों की ज़रूरत होती और मैं उनका प्रबंध नहीं कर पाता तो, मुझे बड़ा बुरा लगता। मैं हताश होकर काम करना बंद कर देता। परंतु फिर कुछ मेरे अंदर होने लगता जो मुझे अपना काम जारी रखने को प्रेरित करता। अभी भी मुझमें प्राय: वह हीन भाव आ जाती है कि इतना कठोर परिश्रम करने के बाद भी मैं जीवन में कुछ अधिक हासिल नहीं कर सका। उन्हें इस बात की तसल्ली है कि उनका परिवार कठिन समय में न केवल उनके साथ रहा बल्कि उनके हर निर्णय में समर्थन भी किया। उनके मित्र भी अधिक नहीं है। उनका विश्वास है कि लोग उनके विचारों और कार्यों को ठीक से समझ नहीं पाते इसलिये वे अपने आप में ही सीमित रहतें हैं। परिवार के अतिरिक्त वे आईआईटी गुवाहाटी स्थित राष्ट्रीय नवाचार प्रतिष्ठान (एनआईएफ) के असम प्रकोष्ठ द्वारा प्रदत्त समर्थन और सहयोग के भी आभारी हैं।

परिष्कृत ऑटो इंजन

यह आविष्कार ऑटो रिक्शा की इंजन असेंबली का परष्किार कर किया गया है। इस परिष्कृत प्रणाली में, निरंतर (इग्जास्ट) गैस के एफ अंश का उपयोग अंदर आने वाली वायु को गर्म करने के लिये किया जाता है। जबकि शेष मात्र को वायु और ईंधन के मिश्रण को इंजन में प्रवेश से पूर्व गर्म करने के लिये उपयोग में लिया जाता है। यह ईंधन का संपूर्ण दहन सुनिश्चित करने के लिये किया जाता है। जिससे ईंधन की कार्यकुशलता बढ़ जाती है, अर्थात कम ईंधन में अधिक माइलेज।

निकासी गैस के ताप का उपयोग साइलेंसर के पाइप से लगे हीट एक्सचेंजर के जरिये, अंदर आने वाली वायु को गर्म करने के लिये किया जाता है। कुछ इग्जास्टर गैस को कम्बुरेटर सेक्शन में भेज दिया जाता है। इसका उपयोग एक अन्य हीट एक्सचेंजर के जरिये वायु और ईंधन के मिश्रण को गर्म करने के लिये किया जाता है। इसके साथ ही, सिलेंडर वाल्व में भी अनेक सुधार किये गए है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि ईंधन वायु का मिश्रण सिलेंडर से बाहर न निकल सके।

इस प्रणाली के उपयोग से, ईंधन के दहन में परिष्करण से कम हानिप्रद प्रदूषक तत्व ही पर्यावरण में मिल पाते हैं। इसके अलावा इग्जास्ट गैस का तापमान भी कम रहता है जिससे यह सुनिश्चित होता है कि उष्मा पर्यावरण में नहीं फैले। इस प्रणाली का परिक्षण आईआईटी गुवाहाटी में किया गया। जिसने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि पारंपरिक इंजनों की तुलना में इस इंजन के उपयोग से ईंधन की कार्यकुशलता में 35 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह भी उल्लेख किया गया कि अंदर आने वाली वायु का पहले ही गर्म कर लेने के साथ-साथ इग्जास्ट गैस से चार्ज करना, एक सर्वथा नयी धारणा है जो अन्य तिपहिया वाहनों में भी संभव है। एनआईएफ के सहयोग से एक परिष्कृत प्रोटोटाइप (प्रारूप) तैयार किया जा रहा है। आईआईटी गुवाहाटी के विशेषण इसका भी प्रशिक्षण कर रहे हैं। एनआईएफ ने शिब शंकर मंडल से पेटेंट (1811/KOL2008) के लिये आवेदन कर दिया है।

वर्तमान में, शिब शंकर मंडल अपने ऑटो रिक्शा में इस प्रणाली का उपयोग कर रहे हैं और उसके निष्पादन से संतुष्ट है। पूर्व में एनएफआईएफ ने मंडल को मुंबई और लखनऊ में टाटा मोटर्स की यात्रा करायी थी। जहा उन्होंने अपनी अवधारणा को स्पष्ट रूप से विशेषज्ञों के समक्ष रखा। एनएफआईएफ ने प्रारूप के विकास और आईआईटी गुवाहाटी में परिक्षण के लिये भी सुविधाएं प्रदान की।

शिब शंकर बचपन से ही किसी अच्छी वाहन निर्माता कंपनी के अनुसंधान विभाग में काम करने का सपना देखते थे। अच्छी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण की सीमा के बावजूद वह वाहन क्षेत्र में काम करने को उत्सुक हैं। वर्तमान में, वे एक स्पोर्टस कार का विकास कर रहें है और मारूति के फोरस्ट्रोक इंजनों की ईंधन कुशलता में सुधार लाने का प्रयास कर रहें हैं।

शिब शंकर सभी साथी नवाचारियों को एक उम्दा सलाह देते हैं। वे कहते हैं कि कुछ नया करने के लिये कठिन एवं पूरे परिश्रम के बावजूद यह आवश्यक नहीं कि आपको शत प्रतिशत सफलता मिल ही जाए। इसका अर्थ यह नहीं कि दुनिया ही समाप्त हो गयी है। लोगों को इसे सहज रूप से लेना चाहिए और आगे बढ़ते रहना चाहिये। दुनिया में और भी बहुतेरे काम हैं। बांग्ला में वे कहते है ''आम्रा जितार ऊपोर रिसर्च करी शेयेर ऊपोर आम्रा 100प्रतिशत कान्फिडेंस नीये बोशे आक्ते पारी ना'' अर्थात हम अपने कार्य के बारे में शत प्रतिशत आश्वस्त नहीं हो सकते। ❑

क्राउड सोर्सिंग

क्राउड सोर्सिंग शब्द पहली बार सन् 2005 में जेफ होवे और मार्क रॉबिन्सन द्वारा प्रतिपादित किया गया था। इसे इस तरह परिभाषित किया गया था, 'एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा कई लोगों की शक्ति से ऐसा कमाल का प्रभाव पैदा करना, जो कभी कुछ ही विशेष लोगों में सीमित रहे हों।' क्राउड सोर्सिंग का अर्थ योगदान प्राप्त करना, धन उगाहना, सेवाएं प्रदान करना, नये विचारों को सामने लाना, सामग्री, तस्वीरें और सूचनाओं को खासकर इंटरनेट और ऑनलाइन कम्युनिटी के विशाल समूह द्वारा प्राप्त करना, बजाय इसके कि इन्हें पारंपरिक तरीके से प्राप्त किया जाये। इसके पीछे का तर्क आधार यह है कि ज्यादा विचार-बुद्धि एकल बुद्धि से बेहतर होती है। कंपनियां बहुधा क्राउड सोर्सिंग पर ज्यादा भरोसा करती हैं, क्योंकि इससे उन्हें अपना आयाम विस्तृत करने और बगैर किसी खर्च के या कभी-कभी निःशुल्क तरीके से ही सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाएं और दक्ष लोग प्राप्त हो जाते हैं। इसे सैद्धांतिक तौर पर जटिल और थका देने वाले कार्यों में विभाजित करने के लिए उपयोग किया जाता है जहां विविधतापूर्ण सूचनाओं को एकत्र करने की आवश्यकता होती है। यह कई स्वरोज़गार प्राप्त लोग शौकिया लोग या कार्यकर्ता, अल्पकालिक श्रमिक, विशेषज्ञ या छोटे व्यापारियों के प्रयासों पर आधारित होता है, जहां ये सभी मिलकर अपना योगदान करते हुए ज्यादा व्यापक और गुणवत्तापूर्ण परिणाम प्राप्त करने में मदद करते हैं। इस माध्यम से काम की रफ्तार बढ़ जाती है, गलतियां कम होती हैं और विश्व के विविध हिस्सों और विविध क्षेत्रों में काम करने वाले लोग एक लक्ष्य के तहत या लक्षित परियोजना पर ऑनलाइन काम करते हुए विविध स्तरों पर अपनी विशेषज्ञता का उपयोग करते हुए लाभकारी परिणाम देते हैं। इस माध्यम से काम करने वालों को ज्यादातर प्रशंसा के रूप में परिणाम प्राप्त होते हैं लेकिन कुछ मामलों में अपना योगदान कर रहे सदस्यों को धन या पुरस्कार भी दिये जाते हैं।

क्राउड सोर्सिंग के कई प्रकार हैं, जैसे क्राउड सोर्स डिजाइनिंग, क्राउड सोर्स फंडिग, माइक्रो टास्किंग या खुला नवाचार। ❑

यूरोक्लियर

यूरोक्लियर बेल्जियम में सर्वथा पहली बार सन् 1968 में खासकर यूरोबॉन्ड बाज़ार में अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू प्रतिभूति आधारित विनिमय को निपटाने के लिए लाया गया था।

यह एक वित्त सेवा कंपनी है, जिसे खासकर प्रतिभूति विनिमय और परिसंपत्तियों की सेवाओं के निपटारे में विशेषज्ञता हासिल होती है। यह लगभग 90 देशों में स्थित वित्त संस्थाओं को प्रतिभूति सेवा मुहैया कराती है। यह विश्व की सबसे बड़ी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिभूति जमा केंद्र हैं। यूरोक्लियर का सकल कारोबार प्रतिवर्ष 500 ट्रिलियन यूरो से भी अधिक है और इसके ग्राहकों की परिसंपत्तियां 23 ट्रिलियन यूरो से भी अधिक है।

सन् 2012 में भारत ने यूरोक्लियर में शामिल होने की संभावनाओं की तलाश शुरू की ताकि पूंजी बाज़ार में विदेशी निवेश को आकर्षित किया जा सके। वित्त बाजार के विशेषज्ञ तर्क देते हैं कि यूरोक्लियर की पहुंच बहुत व्यापक है और इसका आधारभूत ढांचा बहुत मज़बूत है अंतर्राष्ट्रीय निवेशक भारत में तभी निवेश के लिये इच्छुक होंगे, जब उत्पादों का यूरोक्लियर चैनल के माध्यम से व्यवस्थित किया जायेगा। यूरोक्लियर में शामिल होने से भारत को वैश्विक घरेलू करेंसी बॉन्ड में शामिल होने की सुविधा प्राप्त होगी, जिससे भारतीय प्रतिभूतियों के लिए व्यापार आसान हो जायेगा। हालांकि यूरोक्लियर प्रणाली में शामिल होने के लिए विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम में बदलाव किये जाने की भी आवश्यकता होगी। ❑

(संकलन : वाटिका चंद्रा, उप संपादक, *योजना*, अंग्रेजी)

IAS / PCS

Director
नीरज सिंह

GS World

Committed to Excellence

सशक्त टीम, एकीकृत दृष्टिकोण व सटीक मार्गदर्शन

सामान्य अध्ययन

25 Delhi Centre JULY

14 Allahabad Centre JULY

वैकल्पिक विषय

भूगोल, दर्शनशास्त्र, लोकप्रशासन, इतिहास

Our GS Team

संजीव शर्मा भूगोल, पर्यावरण व आपदा प्रबंधन	दीपक कुमार नीतिशास्त्र व राजव्यवस्था
राजू सिंह अर्थव्यवस्था	सुजीत सिंह इतिहास, कला व संस्कृति
एस. एस. राय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी	पंकज मिश्रा सामाजिक मुद्दे

Our CSAT Team

S.S. Bharti, सचिन के. सिन्हा, बडोनी सर,
दीपक कुमार, मधुकर कोटवे,
दिनेश सर, शकील अहमद

GS World Distance Learning Programme

Co-ordinator : Divyasen (9654349902)

Corp. Office
632, 1st Floor, Main Road
Mukherjee Nagar, Delhi - 9
011-47053974, 9868365322

Allahabad Centre
GS World House, स्टैनली रोड
निकट ट्रैफिक चौराहा, इलाहाबाद
7054199894, 7054199895

YH - 88/2014

सबको भाएं
ज्ञान बढ़ाएं
हमारी पुस्तकें

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

e-mail: dpd@sb.nic.in, businesswng@gmail.com
website: publicationsdivision.nic.in
Now on Facebook at www.facebook.com/publicationsdivision

प्रकाशक एवं मुद्रक : ईरा जोशी, अपर महानिदेशक (प्रमुख) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए इंटरनेशनल-प्रिंट-ओ-पैक लिमिटेड, बी 206, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-1, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ., कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : रेमी कुमारी

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2012-14
Reg.No. D.L.-05/3231/2012-14 at RMS, Delhi
23 जून 2014 को प्रकाशित • 29-30 जून 2014 को डाक द्वारा जारी

Licenced under U (DN)-55/2012-14
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

नवीन संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

संघ एवं राज्य सिविल सेवा परीक्षाओं के सामान्य अध्ययन हेतु अत्यन्त लाभदायक सामग्री.
विभिन्न विश्वविद्यालयों के **भारतीय अर्थव्यवस्था** के प्रश्न-पत्र एवं अन्य परीक्षाओं के लिए भी उपयोगी.

Code No. 791
₹ 299/-

Code No. 790
₹ 325/-

टॉपर्स की राय में...

- मैंने अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांक का उपयोग समय के सदुपयोग के लिए किया. —प्रियंका निरंजन
  सिविल सेवा परीक्षा, 2012 में हिन्दी माध्यम से द्वितीय स्थान
- मैंने अर्थव्यवस्था का अतिरिक्तांक पढ़ा है. यह अपने आप में बेजोड़ एवं तैयारी के क्रम में पठनीय अनिवार्य अंक है. —विवेक अग्रवाल
  सिविल सेवा परीक्षा, 2011 में उच्च स्थान पर चयनित
- सामान्य अध्ययन के भारतीय अर्थव्यवस्था का अतिरिक्तांक बेजोड़ है. इसके अलावा इसके अन्य अतिरिक्तांक भी समान रूप से उपयोगी हैं. —अभिनव रंजन श्रीवास्तव
  उत्तर प्रदेश पी.सी.एस. परीक्षा, 2012 में प्रथम स्थान
- मैंने प्रतियोगिता दर्पण के अर्थव्यवस्था एवं सामान्य विज्ञान के अतिरिक्तांकों का अध्ययन किया है, जो तैयारी के दौरान काफी उपयोगी रहे. —दिनेश मिश्रा
  उ.प्र. पी.सी.एस. परीक्षा, 2012 में हिन्दी माध्यम से प्रथम स्थान
- मैंने भारतीय अर्थव्यवस्था व प्रतियोगिता दर्पण समसामयिक वार्षिकी पढ़ी है. —प्रियम माहेश्वरी
  मध्य प्रदेश पी.एस.सी.परीक्षा, 2010 में तृतीय स्थान

मुख्य आकर्षण

✸ भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं ✸ महत्वपूर्ण आर्थिक शब्दावली ✸ भारत की जनगणना 2011 के अंतिम आँकड़े ✸ राष्ट्रीय आय, कृषि, उद्योग, मुद्रा, बैंकिंग, परिवहन, संचार, विदेशी व्यापार एवं विदेशी ऋण आदि के अद्यतन आँकड़े ✸ आर.बी.आई. की नवीन मौद्रिक एवं साख नीति ✸ 2014-15 का अन्तरिम केन्द्रीय बजट एवं रेल बजट ✸ विदेशी व्यापार नीति 2009–14 ✸ आर.बी.आई. की नवीन मौद्रिक एवं साख नीति ✸ वैश्विक परिवेश में भारतीय अर्थव्यवस्था 2013-14 ✸ भारत का विदेशी व्यापार : 2013-14 ✸ भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं ✸ भारत में संचालित रोजगारपरक एवं निर्धनता निवारण कार्यक्रम ✸ सामयिक आर्थिक विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ ✸ महत्वपूर्ण बहुविकल्पीय प्रश्न.

अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता से अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराएं

प्रतियोगिता दर्पण
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, **आगरा**-282 002 फोन : (0562) 4053333, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
• E-mail : care@pdgroup.in • Website : www.pdgroup.in
• **नई दिल्ली** 23251844/66 • **हैदराबाद** 66753330 • **पटना** 2673340 • **कोलकाता** 25551510 • **लखनऊ** 4109080